# शब्द-विज्ञान

(विश्व भाषाओं की कुमाउनी आधारित व्युत्पत्ति)

'प्रथम-खण्ड'

हरिदत्त शर्मा

# SCIENCE OF THE WORD

(Etymologia of world's languages based on Kumaoni)

(PART-ONE)

H.D. Sharma

5-5

आदरणीया
सुश्री अर्मिला शर्मा जी
को सादर -
[illegible]
17.11-2020
मो० ~~[illegible]~~
9454893409

# शब्द-विज्ञान

(विश्व भाषाओं की कुमाउनी आधारित व्युत्पत्ति)

(प्रथम-खण्ड)

- हरिदत्त शर्मा
अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान
महाराजा बलवन्त सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गंगापुर, वाराणसी

# Science of the Word

(Etymologia of world's languages based on Kumaoni)

(Part-One)

- H. D. Sharma
Head Dept. of political science
M.B.S. P.G. College, Gangapur,
Varanasi.

राजनीतिक अकादमी, वाराणसी.

* **शब्द–विज्ञान**
(विश्व भाषाओं की कुमाउनी आधारित व्युत्पत्ति)

* **Science of the Word**
(Etymologia of world's languages based on Kumaoni)

* लेखक : हरिदत्त शर्मा
मो० 9454893409

* राजनीतिक अकादमी, वाराणसी (प्रकाशन)
C/O- 9, कीर्ति नगर, करौंदी, सुसुवाही, वाराणसी - 221005
☎460691

* © लेखकाधीन.

* प्रथम संस्करण, 2001

* मूल्य : 100/-

* *कम्प्यूटराइटर : आशीष ग्राफिक्स; अस्सी वाराणसी।* ☎ 366673

* मुद्रक : काबरा आफसेट, रविन्द्रपुरी कॉलोनी, वाराणसी।

## यास्क की स्मृति में

यह शब्द-विज्ञान विश्व के ज्ञात प्रथम वैज्ञानिक यास्क की स्मृति में लिखी गई है, जिन्होंने अपने ग्रंथ निरुक्त में शाकटायन के मत का विवेचन कर बताया है कि किस प्रकार विज्ञान - अँख्यात > आख्यात = क्रिया - परिवर्तित होकर शब्द (भाषा) का स्वरूप ग्रहण करता है। यास्क ने वैदिक, पौराणिक एवं आध्यात्मिक निरुक्ति के माध्यम से विश्व को यह संदेश दिया कि सृष्टि तीन स्तरों के समन्वय से क्रियाशील है तथा ये तीनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। ये तीन स्तर हैं- भौतिकी प्रधान वैदिक मत, जैव रसायनिक समीकरण प्रधान पौराणिक मत तथा सर्वोच्च स्तर की अनुभूति प्रधान अध्यात्म मत। इन तीनों में से किसी एक की अति अथवा अत्यल्पता संतुलन को प्रभावित कर देती है। मानव समाज में यह संतुलन तभी उत्पन्न विकसित एवं प्रवाहशील धारा के रूप में स्थाई होता है जब कि भाषा स्वयं सृष्टि के मौलिक सिद्धान्त (दर्शन) पर खड़ी होती है; अन्यथा मानव सभ्यता 'युगों' के चक्रीय क्रम के विनाशकारी प्रभावों से बच नहीं सकती हैं।

◆

# संकेत

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अं० | = | अंग्रेजी | पु०उ०ज० | = | पुरानी उच्च जर्मन |
| इ० | = | इटालियन | फ्रैं० | = | फ्रैंच |
| उ०ज० | = | उच्च जर्मन | पो० | = | पोलिश |
| ऐं० से० | = | ऐंग्लो सेक्सन | भो०पु० | = | भोजपुरी |
| कु० | = | कुमाउनी | रू० | = | रूमानियन |
| ग्री० | = | ग्रीक | लै० | = | लैटिन |
| चे० | = | चेक | व्या० | = | व्याख्या |
| ज० | = | जर्मन | व्यु० | = | व्युत्पत्ति |
| डे० | = | डेनिश | स्पे० | = | स्पेनिश |
| प्रा०अं० | = | प्राचीन अंग्रेजी | स्लो० | = | स्लोवाक |
| प्रा०ग्री० | = | प्राचीन ग्रीक | स्वी० | = | स्वीडिश |
| प्रा०च०स्ला० | = | प्राचीन चर्च स्लावोनिक | स० क्रो० | = | सर्ब एवं क्रोट |
| प्रा० ना० | = | प्राचीन नार्स | सं० | = | संस्कृत |
| प्रा० पु० | = | प्राचीन पुर्तगीज | हं० | = | हंगेरियन |
| फि० | = | फिनिश | हि० | = | हिन्दी |
| पु० | = | पुर्तगीज | > | = | पहले शब्द से व्युत्पन्न शब्द |

◆

# विषय–सूची


1. यास्क की स्मृति में ..... III
2. संकेत ..... IV
3. दो शब्द ..... VI
4. यास्क के सिद्धान्त का परीक्षण ..... VIII
5. विश्व भाषाओं की रहस्यमय एकता ..... 01
6. कुमाउनी : ग्रीक ..... 31
7. कुमाउनी : अंग्रेजी ..... 44
8. कुमाउनी : पुर्तगीज ..... 56
9. कुमाउनी : जर्मन ..... 59
10. कुमाउनी : डच ..... 66
11. कुमाउनी : प्राचीन नार्स ..... 68
12. कुमाउनी : नार्वेजियन ..... 69
13. कुमाउनी : स्वीडिश ..... 71
14. कुमाउनी : डेनिश ..... 73
15. कुमाउनी : लैटिन ..... 73
16. कुमाउनी : ओस्कान और उम्ब्रियन ..... 78
17. कुमाउनी : रोमांस भाषाएँ ..... 82
18. कुमाउनी : फ्रैंच ..... 84
19. कुमाउनी : स्पेनिश ..... 92
20. कुमाउनी : इटालियन ..... 95
21. कुमाउनी : रूमानियन ..... 97
22. कुमाउनी : रूसी ..... 99
23. कुमाउनी : पोलिश ..... 102
24. कुमाउनी : चेक (जेक) और स्लोवाक ..... 104
25. कुमाउनी : सर्ब एवं क्रोट ..... 106
26. कुमाउनी : प्राचीन चर्च स्लावोनिक या पुरानी बल्गेरियन ..... 109
27. कुमाउनी : हंगेरियन ..... 111
28. कुमाउनी : फिनिश या सुओमि ..... 114


◆

# दो शब्द

यह कृति आदिकाल से आजतक और भविष्य की भाषा विकास यात्रा की वैज्ञानिक व्याख्या है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विधा शब्द और भाषा की उत्पत्ति और विकास की वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या नहीं कर सकती है। यह विधा मेरी नहीं है, यह हजारों, लाखों वर्षों से चली आ रही वह विधा है जिसे लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व 'निरुक्त' के प्रणेता यास्क ने वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया था। विश्व की समस्त भाषाओं और शब्दों को जानने की यही एकमात्र विधा है। इस कृति का मर्म भले ही आज भाषाविदों को असहज लगे परन्तु भविष्य में इसे समझने की क्षमता सामान्यजनों में भी विकसित हो जाएगी। इस विषय में उठने वाली कुछ जिज्ञासाओं का भी इस पुस्तक में विवेचन किया गया है। इसमें भाषाओं की तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के अतिरिक्त विज्ञान और शब्द का सम्बन्ध, विज्ञान और दर्शन में अन्तर, भाषाओं की दार्शनिक स्थिति और उनके द्वारा उत्पन्न होने वाले वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन दर्शन पर होने वाले प्रभावों का भी विवेचन किया गया है।

यहाँ पर जिन विद्वानों की विवेचनाओं के उद्धरण दिए गए हैं, उसका उद्देश्य प्राचीन लेखनों में प्रयुक्त शब्दों का शाब्दिक (रूढ़) अर्थ में अनुवाद करने की हमारी प्रवृत्ति को स्पष्ट करना है। यह प्रवृत्ति सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। इसी प्रवृत्ति के कारण प्राचीन काल में प्रयुक्त शब्दों का क्रियाधारित (वैज्ञानिक) अर्थ न लगाकर रूढ़ अर्थ लगाया जाता है। शब्द का अर्थ करने की इसी प्रवृत्ति ने सम्पूर्ण विश्व को धर्मान्धता एवं अन्य अमानवीय दुर्गुणों से व्याप्त कर रखा है। दूसरी ओर विज्ञान इस प्रवृत्ति का विरोध तो करता है, परन्तु वह भी शब्द का सही अर्थ करने के किसी सैद्धान्तिक आधार को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हो सका है। यही कारण है कि धर्मान्धता और अन्धविश्वास अब तक विश्व में अपनी पकड़ बनाए हुए हैं। विज्ञान की इस असमर्थता ने स्वयं विज्ञान को एक अंधविश्वासी महादैत्य के रूप में परिवर्तित कर दिया है। यह विज्ञान को 'सभी समस्याओं का निदान' समझ लेने का परिणाम है। इस विचार ने राज्यों, नेताओं और शासकों को 'विज्ञानवादी विचारधारा' के पर्दे में रहकर सत्ता के दुरुपयोग की खुली छूट दे दी है। यह प्रवृत्ति भारत जैसे विश्व के सभी विकासशील देशों में अधिक उग्र रूप में विकसित हुई है, जहाँ नेता, राजनीतिक दल, राजनीतिक गिरोह और शासकों ने लूटतंत्र, भ्रष्टाचारतंत्र, अत्याचारतंत्र को विकसित कर, अनैतिक मूल्यों की स्थापना के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता को त्रस्त कर रखा है।

'विज्ञान प्रत्येक रोग की औषधि है' वर्तमान सभ्यता का यह दर्शन अपने ही द्वारा उत्पन्न 'वैज्ञानिक आतंकवाद' के समक्ष सहमा हुआ सा दिखाई देता है। उसकी

विवशता में वही झलक दिखाई देती है जैसे किसी व्यक्ति की उदास आंखों में अपनी उद्धत प्रवृत्ति को एकमात्र सत्य मान लेने की भूल का पछतावा एवं किंकर्त्तव्य विमूढ़ता दिखाई देती है। विश्व के सभी देशों में विज्ञानवाद द्वारा स्थापित मूल्यों का परिणाम आज सम्पूर्ण मानवता त्रासपूर्वक देख रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ११ सितम्बर सन् २००१ को हुए आतंकवाद प्रायोजित विमान बम हमलों ने वैज्ञानिक सभ्यता के क्रूरतम स्वरूप को पुनः उजागर कर दिया है। यह विज्ञान और राजनीति के नाम पर 'शब्द' का सर्वत्र दुरुपयोग किए जाने का एक छोटा सा परिणाम है। दर्शन विहीन, अनियंत्रित, स्वेच्छाचारी, निरंकुश, वर्तमान वैज्ञानिक यान्त्रिकी से उत्पन्न 'शब्द प्रदूषण' मानवीय चेतना को प्रभावित करता है। कालान्तर में यह ध्वनि या शब्द' मानव को भी एक यंत्र बना देती है। इसका स्वरूप आत्मघाती मानव बम, मानव मशीनगन, या मानव हवाई जहाज बम आदि के रूप में देखा जा सकता है। सभ्यता को समझने और उसे मानव के अनुरूप बनाने के लिए शब्द के वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों स्वरूपों को जानना आवश्यक है, तभी विज्ञान और अध्यात्म में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। इसके बिना न तो विज्ञान को समझा जा सकता है, न अध्यात्म को, न मानव सभ्यता को और न ब्रह्माण्ड के रहस्यों को।

मैं उन सभी लोगों का आभारी हूँ जिन्होंने विगत कई वर्षों से लगातार अनेक लोक प्रचलित शब्दों और उनके व्यावहारिक पक्ष की जानकारी दी है। ये सभी लोग उत्सुकता पूर्वक इस कृति के प्रकाशन की प्रतीक्षा भी करते रहे हैं। अब इसका प्रथम खण्ड प्रकाशित है। यह पुस्तक लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति किस स्तर तक करेगी यह कहना कठिन है, परन्तु यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि भले ही पाठकगण इससे पूर्णतः संतुष्ट न हों फिर भी अनेक नई बातों से वे परिचित होंगे जिनकी वे कल्पना भी नहीं करते रहे हैं। मैं उन सभी विद्वानों को नमन करता हूँ जिनको इस पुस्तक में उद्धृत किया गया है अथवा नहीं किया गया है, क्योंकि इन्हीं के मार्ग तंतुओं को पकड़कर मेरे लिए आगे बढ़ना सम्भव हुआ है।

आशा है, जिज्ञासु पाठक अनेक नई बातों, नए विचारों, नई शैली और भविष्य की एक नई संकल्पना से परिचित होंगे।

दिनांक १ नवम्बर, २००१.

**हरिदत्त शर्मा**
अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान
महाराजा बलवन्त सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गंगापुर, वाराणसी।

## यास्क के सिद्धान्त का परीक्षण

विश्व के भाषाविदों में यह बात घर कर गई है कि पाश्चात्य भाषाविदों की विज्ञान आधारित पद्धति के निष्कर्ष अंतिम होते हैं। यथार्थ में पश्चिमी भाषाविद जैसा कहना चाहते हैं उसके लिए वैसे ही तर्क गढ़ लेते हैं और विज्ञान की ओट लेकर उनकी पुष्टि भी कर देते हैं। यहाँ पर संस्कृत में 'झ' के विकास के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मतों का विवेचन किया जाता है। डॉ देवीदत्त शर्मा ने लिखा है– "छ् के समान ही झ् के विकास की समस्या उलझी हुई है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार झ् को ज् का महाप्राण रूप माना जाता है; किन्तु ऐतिहासिक तथा संरचनात्मक दोनों ही दृष्टियों में ज् तथा झ् का उपर्युक्त सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि संरचनात्मक दृष्टि से ज् की अनुरूपी महाप्राण ध्वनि ह् बनती है झ् नहीं। भारोपीय ध्वनियों के विकासक्रम में हम देखते हैं कि मूल भारोपीय घ् तथा घ्व् का अग्रस्वरों से पूर्व में आने पर ह् तथा पश्च स्वरों के साथ आने पर घ् के रूप में विकास होता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि संस्कृत में झकार वाले शब्द बहुत कम पाये जाते हैं तथा विशेषकर ऐसे शब्द मात्र अनुकरणात्मक ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, यथा– झणझण, झंकार, झंकृति, निर्झर आदि। विद्वानों का अनुमान है कि अन्य झकार युक्त शब्द संस्कृत में यहाँ की अनार्य भाषाओं से लिए गये हैं (एडगर्टन–'संस्कृत हिस्टोरीकल फोनोलाजी' न्यूहैवन, 1946 पृ०11)। अत: कहा जा सकता है कि संस्कृत की झ् ध्वनि किसी भारोपीय ध्वनि का विकास न होकर स्वयं संस्कृत में एक नवीन ध्वनि की योजना है जिसे कि इसने किसी अन्य भारतीय भाषा से ग्रहण किया था। इसका उच्चारण घोष महाप्राण तालव्य की भांति होने से इसे ज् का महाप्राण अनुरूपी समझ लिया गया है।" (–'संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय' पृ० 66)।

उपर्युक्त विवेचना पश्चिमी मत का अनुकरण मात्र है। यदि झ् के विकास (उद्भव) का यास्क के 'क्रिया सिद्धान्त' के अनुरूप परीक्षण किया जाय तो संस्कृत वैयाकरणों का मत प्रमाणित हो जाता है कि ज् का महाप्राण झ् है। इसके परीक्षण कि लिए यांत्रिकी तथा द्रव्य विशेष का होना आवश्यक है तभी 'क्रिया' उत्पन्न हो सकती है। इसके लिए हमें विज्ञान की प्रयोगशाला में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, न वैज्ञानिक उपकरणों की। हम लौकिक क्रियाओं और 'श्रुति' (लोक प्रयुक्त शब्द) के आधार पर इसका परीक्षण कर लेते हैं। 'जल' के अनेक रूप होते हैं। हरीमिर्च या पुदीना का जल (रस) लेते हैं। जब इसे जीभ में रखा जाता है तो लार के सम्पर्क से इसमें क्रिया उत्पन्न होती है और यह 'जल्' 'झल्' में परिवर्तित या विकसित हो जाता है। 'झल्' रासायनिक क्रिया से उत्पन्न झन-झनाहट या प्रभाव का नाम है। इसी आधार पर मिर्च के प्रभाव का एक नाम कुमाउनी में 'झाली' है। ज् का झ् में यह परिवर्तन सर्वोच्च स्तर का है। विज्ञान में इसे द्रव्य की ऊर्जा का विद्युत तरंगों में परिवर्तन कहा जाता है। इसी अर्थ में संस्कृत के आचार्यों ने झ् को ज् का महाप्राण कहा है। शरीर में उत्पन्न झन-झनाहट (कु० झौनि, हि० झुनझुनी) विद्युत का एक प्रकार है। विद्युत स्पर्शाघात के स्तर पर यही 'झौनि' 'झी' (= नहीं) बन जाती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पश्चिमी एवं पश्चिम प्रभावित भाषाविदों के तुलनात्मक भाषा विवेचन का कोई वैज्ञानिक धरातल नहीं है तथा वर्तमान संस्कृतज्ञ यास्क के सिद्धान्त के अनुरूप वैज्ञानिक विवेचन की पद्धति को विस्मृत कर चुके हैं। यह बात विशेषत: उन पर लागू होती है जो यास्क की निर्वचन पद्धति को अवैज्ञानिक, कल्पना मूलक अथवा व्यर्थ की माथापच्ची कहते हैं।

◆ ◆

## विश्व भाषाओं की रहस्यमय एकता

गीता में कहा गया है कि अव्यक्त (अमूर्त्त विचार, आत्मा) से व्यक्त (शरीर, वस्तु आदि) बनने और उस व्यक्त का पुन: नाश होने (अव्यक्त बनने) की कथाओं अर्थात् सृष्टि के विकास क्रम (चक्र) को कुछ लोग आश्चर्य की तरह देखते हैं, कुछ आश्चर्य की तरह इसका वर्णन करते हैं तथा कुछ आश्चर्य की तरह इसको सुनते हैं, कुछ लोग सुनकर भी इसे जान नहीं पाते हैं।[1] ठीक इसी प्रकार "शब्द-विज्ञान" भी सभी को आश्चर्य में डालने वाला है।

'शब्द-विज्ञान' नामक इस पुस्तक की नींव सन् १९९३ में ही पड़ गई थी जब मैंने 'परमाणु, मन और विज्ञान' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी थी। तभी मुझे यह प्रतीति हुई कि प्राचीन संस्कृत वाङ्मय सम्पूर्ण विज्ञान का कोश है, परन्तु उसे लोक भाषाओं और परंपराओं के बिना नहीं समझा जा सकता है, इसके लिए विश्व की अनेक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक प्रतीत हुआ। राजनीति विज्ञान का छात्र होते हुए भी प्राचीन ग्रीक राजनीतिक विचारकों की आधुनिक यूरोपीय विद्वानों द्वारा की गई शाब्दिक व्याख्या और भारतीय विद्वानों द्वारा प्राचीन भारतीय राज्यविज्ञान की व्याख्या के प्रति मुझे सदा कहीं न कहीं कोई कमी दिखाई देती रही है। इन लोगों की व्याख्याओं की शुद्धता के प्रति सदा एक संशय बना रहा। यह प्रतीति मेरा पीछा नहीं छोड़ती थी कि ये व्याख्यायें सतही हैं, यथार्थ इससे भिन्न है, साथ ही वर्तमान मूल्य विहीन राज-व्यवस्था तथा पद के कन्धों पर ढोयी जा रही मण्डूकी विद्वत्ता के प्रति एक वितृष्णा भी बनी रही।

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है– 'रुद्र का स्तुतिपरक यह मन्त्र नितान्त प्रसिद्ध है–

*"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।*
*उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।। ऋ० ७/५३/१४।।*

त्र्यम्बक शब्द का अर्थ समस्त भाष्यकारों ने 'तीन नेत्र वाला' किया है, परन्तु पश्चात्य विद्वानों को इस अर्थ में अस्था नहीं है। वे यहाँ 'अम्बक' शब्द को जननी वाचक मानकर, रुद्र को तीन माता वाला बतलाते हैं, परन्तु, यह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता कि रुद्र की ये तीन माताएँ कौन सी हैं। वैदिक काल के अनन्तर रुद्र की पत्नी के लिए प्रयुक्त 'अम्बिका' शब्द का प्रथम प्रयोग वाजसनेयी संहिता (३/५७) में आता है, परन्तु इतना फर्क जरूर है कि यह उनकी पत्नी का नाम न होकर उनकी भगिनी का नाम बतलाया गया है।"[2]

---

१. *आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्य:।*
*आश्चर्यवच्चैनमन्य: श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। २। २९।।*

२. *भारतीय साहित्य का अनुशीलन, पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, भूतपूर्व संचालक, अनुसंधान संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, शारदा संस्थान, वाराणसी, १९८५ पृ० २२।*

आचार्य जी के उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि 'त्र्यम्बक' शब्द का अर्थ निश्चित नहीं है। निरुक्त एवं संस्कृत व्याकरण के अध्येता 'त्रयम्बक' का अर्थ परंपरागत रूप में करते हैं, प्राय: सभी वैदिक शब्दों की यही स्थिति है, यही कारण है कि वेद से सम्बन्धित समस्त विज्ञान लुप्त प्राय: हो गया है। विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से हम 'अम्ब' 'अम्बिका' और 'त्र्यम्बक' के भौतिक आधार को ज्ञात कर सकते हैं।[1] जब हमें भौतिक आधार ज्ञात हो जाता है तो उसका आध्यात्मिक स्वरूप ज्ञात करना कठिन नहीं रह जाता है, क्योंकि यथार्थ द्रव्य में निहित गुण का नाम देवशक्ति कहा जाता है। जब तक यह शक्ति किसी द्रव्य में होती है तभी तक वह क्रियाशील रहता है, इसके तिरोहित (समाप्त) हो जाने पर वह केवल मृत्तिका रह जाता है। किसी भी वैदिक शब्द के भौतिक स्वरूप का निश्चय करने के लिए, पुराणों का आश्रय लिया जाता है। पुराण विराट् पुरुष अथवा शरीर ब्रह्माण्ड की क्रियायें हैं, जिन्हें पुराणों ने द्रव्य में निहित गति को 'देव' तथा उसके स्थिर गुण को 'रक्ष' का स्वरूप मानते हुये, देव-दानवों (राक्षसों) के युद्ध की आश्चर्य जनक कथाओं का सृजन किया है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एक व्यवस्था है जो स्थूल द्रव्य और उसकी क्रियाओं से उत्पन्न सूक्ष्म विद्युत चुम्बकीय प्रभाव से परस्पर आबद्ध है। इसी के रहस्य की कथाएँ पुराणों में है। यहाँ पर 'अम्ब' शब्द में अम् धातु (मूल भौतिक आधार) द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है कि लोक में 'अम्' का अर्थ आम् से सम्बद्ध अनेक शब्द प्रकारों में मिल जाता है जैसे अमिया, अमचूर, अमरक, अमावट, अमौर (आम के बौर या पके आम की गन्ध) आदि। ग्रीक तथा अंग्रेजी में 'अम्' से व्युत्पन्न अनेक शब्दों में एक शब्द है अमोनिया, अमोनियमक्लोराइड (नौसादर)। भौतिक तत्त्वों का ज्ञान हो जाने के अनन्तर पौराणिक आख्यानों को देखते हैं कि 'अम्बिका' के किन-किन कार्यों का वर्णन किया गया है। जब भौतिक तत्त्व द्वारा शरीर में होने वाली दिव्य क्रियाओं एवं पौराणिक वर्णन में समानता है तो यह समझ लेना चाहिये कि यही द्रव्य विशेष 'अम्बिका' का भौतिक स्वरूप है। 'अम्ब' 'अम्' से सम्बद्ध द्रव्य का जलीय रूप है, अत: तीन प्रकार के 'अम्बों' से उत्पन्न शक्ति का नाम 'त्र्यम्बक' है। चक्षु या नेत्र इसे इसलिये कहा जाता है कि इसी के 'बल' पर वृक्षों, लताओं में आँख, अंखुआ, (कोपल) का जन्म होता है। वृक्षों की मनुष्य की तरह आंख नहीं होती हैं, उसकी आंख यही अंखुआ या (कु०) आँख होती है जिसके बल

---

*१. निरुक्त (१/४/१) में यास्क ने शाकटायन का मत दिया है कि सभी शब्द (नाम) आख्यात (क्रिया) से व्युत्पन्न होते हैं। यह सिद्धान्त वैदिक शब्दों के यथार्थ अर्थ को निर्धारित करने का एक मात्र आधार है, क्योंकि क्रिया का ज्ञान भौतिक जगत की परस्पर क्रियाओं से ही होता है, अत: शब्द के सही अर्थ के लिए उसका भौतिक आधार ज्ञात करना चाहिये।*

*टिप्पणी : मोनियर-विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी शब्द कोश में 'त्र्यम्बक' शब्द के दोनों अर्थ दिये हैं:- तीन नेत्रों वाला तथा तीन माताओं वाला।*

पर वृक्ष स्वयं का विस्तार करता है।[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक शब्दों का यथार्थ ज्ञान लौकिक शब्दों के बिना नहीं हो सकता है। इस प्रकार हम प्राचीन साहित्य में निहित 'विज्ञान' को आज की शैली में परिवर्तित कर लेते हैं।[2] यहाँ पर विस्तृत व्याख्या देना सम्भव नहीं है। इसी पुस्तक में 'गृह्य सूत्रों में लोक संस्कृति' नामक अध्याय के अन्तर्गत आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं— ''पारस्कर गृह्यसूत्र (३/७) में 'उतूल परिमेह' नामक एक अनुष्ठान का वर्णन है। 'उतूल' शब्द का अर्थ है दास, नौकर। यह शब्द पारस्कर तथा हिरण्यकेशी गृह्यसूत्रों को छोड़कर संस्कृत में कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। मेरी दृष्टि में यह शब्द देशी प्रतीत होता है अर्थात् किसी देशी-भाषा में सेवक या नौकर को उतूल कहते थे और वहीं से सीधे संस्कृत में ले लिया गया है। 'उतूल' नामक किसी जाति विशेष का उल्लेख महाभारत में किया गया है।..... (मंत्र इस प्रकार है)—

*परि त्वा गिरे रह परि मातुः परि स्वसु।*
*परि पित्रोश्च भ्रात्रोश्च सख्येभ्यो विसृजाम्यहम्।*
*उतूल परिमीढोऽसि परिमीढ़ः क्व गमिष्यसि।। पा०गृ० ३। ७।।*

इसका आशय है कि मैं तुमको पहाड़ से, माता से, बहिन से माता-पिता से, भाइयों से तथा मित्रों से छोड़ा रहा हूँ। मंत्र शक्ति के द्वारा इन सेचन रूपी-पाशों से मैंने तुम्हें बांध रखा है। अब तुम कहाँ जाओगे''[3]

सामान्यतः संस्कृतज्ञ स्वयं को 'देशी' नाम से अलग रखते हैं। ऐसा इसलिएं कि लोक भाषा को वे वैदिक शब्दों अथवा संस्कृत भाषा का आधार नहीं मानते हैं, यहाँ तक कि पाणिनि आदि व्याकरणाचार्यों के 'लौकिकानां' भाषा का अर्थ वैदिक संस्कृत से भिन्न, महाभारत, रामायण, तथा बाद के लेखकों की

---

*१. यह ऋषियों की विशिष्ट दृष्टि ही है कि वृक्ष की आँख और प्राणियों की आँख में समानता को देख सके जो विकास क्रम को समझने का अपना विशिष्ट ढंग है।*

*२. आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में ''पुराणेतिहास में देवों के शरीरी होने के प्रचुर निर्देश मिलते हैं। ब्र०सू० २/१/१/ के भाष्य में आचार्य (शंकर) ने किसी पुराण से जो वचन उद्धृत किया है, वह बड़े महत्त्व का है.....'' पुराण विमर्श, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी (तृ०सं०) १९८७, पृ० ३०। विशेष- प्राचीन विद्वान मूल शक्ति (क्वार्क, इलेक्ट्रान) को जान लेते थे परन्तु आधुनिक संस्कृतज्ञ विज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण देव स्वरूप के शरीर रूप को नहीं पहचान सकते हैं, यदि उनसे इस बारे में बात की जाती है तो वे इस पर कोई ध्यान ही नहीं देते हैं, अथवा वे इस मानसिकता के और भाव भंगिमा के वशीभूत होते हैं कि- कहाँ वेद का आध्यात्मिक ज्ञान, कहाँ ऐसी भौतिक व्याख्यायें! इनको एक कैसे माना जा सकता है? इसी वृत्ति के कारण 'वेद' ज्ञान लुप्त है। मान लें यह कथन गलत ही है, तो भी प्रयास कर वे इसे गलत तो प्रमाणित कर सकते हैं। तब यह निश्चित हो जाएगा कि कोई अन्य पद्धति 'वेद' के अर्थ को जानने की है। अपनी इसी वृत्ति के कारण वे पुराणों के 'शब्द-ब्रह्म' और 'पर-ब्रह्म' को भी समझने का प्रयत्न नहीं करते हैं।- ले०।*

*३: भारतीय साहित्य का अनुशीलन, पृ० ५४।*

*विशेष : मोनियर-विलियम्स ने संस्कृत-अंग्रेजी शब्द कोश में 'उतूल' शब्द का अर्थ नौकर दिया है। उपरोक्त दोनों गृह्य सूत्रों एवं महाभारत के अतिरिक्त वराहपुराण में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।*

संस्कृत से लगाते हैं। उनके द्वारा की गई देशज शब्दों की उपेक्षा के कारण ही वैदिक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन नहीं हो सका है। आचार्य उपाध्याय जी ने देशी शब्द होने की बात मानी है। यह लोक भाषा के प्रति उनकी रुचि एवं महत्त्व की ओर संकेत है परन्तु वे यह नहीं जान सके कि यह कहाँ पर प्रयुक्त होता है। लोक साहित्य या देशज शब्दों का ही संस्कृत में 'श्रुति' नाम है, परन्तु व्याख्याकारों ने 'श्रुति' को वेद की लिखित पुस्तकों तक सीमित कर प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध महान विज्ञान को 'अन्धविश्वास' की श्रेणी में खड़ा कर दिया है।[1] यह बात कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि वर्तमान विज्ञान से कहीं अधिक सूक्ष्म वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन इस विशाल साहित्य में किया गया है, परन्तु इसे जानने की पद्धति की लुप्तता के कारण सभी लोग इस ज्ञान पुंज की व्याख्या न कर पाने से मर्माहत हैं, फिर भी, यदि कोई नये ढंग से इसकी व्याख्या करे तो अपने पारंपरिक संस्कारों के कारण उसे कोई महत्त्व देने की स्थिति में नहीं होते हैं। 'पद' की पीठ पर आरूढ़ विद्वानों को तो कुछ नया समझने का न तो समय है, न अपने मस्तिष्क को वे कोई कष्ट देना चाहते हैं और न पद द्वारा प्राप्त विलासिता के सुख से वंचित होना चाहते हैं।

डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "पाणिनि और संस्कृत के भाषा वैज्ञानिक रिक्थ से प्रेरित होकर भारतीय भाषा विज्ञान को जो प्रगति करनी चाहिये थी, वह उसने नहीं की। इसका मुख्य सामाजिक कारण भारतीय सामन्तवाद का ह्रास और उसके ह्रास काल में यहाँ अंग्रेजों का प्रभुत्व था। संस्कृत और पाणिनि के अध्ययन-अध्यापन की पद्धति वही पुराने ढंग की बनी रही। यूरोप के भाषा विज्ञानी न केवल भौतिक विज्ञान से भी परिचित थे और विशेषकर जीव विज्ञान से वे प्रभावित हुए थे। ज्ञान के इस आधुनिक विकास से भारत के रूढ़िवादी विद्वान अपरिचित थे। उनके विरोध में जो भी नई प्रवृत्तियाँ उभरती थी वे उनका दमन बड़ी कट्टरता से करते थे"।[2]

उपर्युक्त बातें डॉ० शर्मा ने विगत दो सौ वर्षों के भाषा शास्त्र के सन्दर्भ में कही हैं। डॉ० शर्मा की इस टिप्पणी से कि 'रूढ़िवादी नई प्रवृत्तियों का दमन करते थे' सत्य के निकट नहीं है। यथार्थ में पश्चिमी और पश्चिमी वृत्ति पर जीवन यापन करने वाले भारतीय व्याख्याकारों ने संस्कृत वाङ्मय की जैसी सतही व्याख्या की है, वह केवल शब्दार्थ है। इस शब्दार्थ के माध्यम से उन्होंने कुल

---

*१. संस्कृत की विशेषता है कि किसी भी शब्द का अर्थ सन्दर्भ के अनुरूप कहीं पर भी लगाया जा सकता है। पुराणों ने 'पंकज' के महत्त्व को अनेक प्रकार से वर्णन किया है। 'पंकज' का अर्थ 'पंक' अर्थात् कीचड़ या गीली मिट्टी होता है। इसका दूसरा नाम 'पंच महाभूत' है, उससे सारी सृष्टि बनी है, जो आज तक विकसित 'कमल' है। इसी तरह 'कमल' रूपी संस्कृत भाषा का मूल भी देशज शब्द या लोक भाषा रूपी 'पंक' (आधारभूत शब्द) है।*

*२. भाषा और समाज, भूमिका पृ० २६, राजकमल प्रकाशन, १९७७.*

मिलाकर संस्कृत साहित्य के अवैज्ञानिक होने का जोर-शोर से प्रचार किया। उन्होंने पाणिनि जैसे ऋषियों के व्याकरण को महान कृति तो कहा परन्तु उसे अभी तक समझने में समर्थ नहीं हो सके हैं। यह उन्हीं रूढ़िवादी विद्वानों का दृढ़ विश्वास है जो यह समझते हैं कि संस्कृत साहित्य विश्व का अप्रतिम ज्ञान है और जिसके कारण भारत सहित सारे विश्व की छद्म विद्वता द्वारा की गई अपशब्दों की पाषाण वर्षा को वे लगातार सहते रहे हैं। यह बात अलग है कि वे भी सही व्याख्या देने की स्थिति में नहीं है क्योंकि ऐतिहासिक काल चक्र ने व्याख्या की वैज्ञानिक पद्धति को विलुप्त कर दिया है। संस्कृत के विद्वान ज्ञान के सम्बन्ध में उदार होते हैं वे प्राय: आधुनिक ज्ञान के ओझाओं द्वारा ठगे जाते हैं। यह अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का दोष है, जिसने पश्चिमी ढंग के विज्ञान की चकाचौंध को ही विज्ञान का आधार बनाया और आज स्थिति यह है कि सारा विश्व कल के भय से त्रस्त है। चाहे देश के भीतर हो या विश्व स्तर पर सभी एक दूसरे की जड़ काटने में संलग्न हैं, यह स्थिति अन्तत: परमाणु युद्ध जनित विनाश में परिवर्तित हो जाए तो किसी को तब मानवता के नाम पर आंसू बहाने की आवश्यकता नहीं रहेगी। वर्तमान भारत का प्रत्येक बुद्धिवादी शासकीय कृपाओं, प्रशंसाओं और गौरव को बटोरने में तल्लीन है किसी ने भी संस्कृत साहित्य के मूल को समझने का प्रयत्न नहीं किया। अत: संस्कृतज्ञों पर ही सारा दोष मढ़ देना उचित नहीं है।

अब पुन: 'उतूल' शब्द पर विचार कर लेना उचित है। कुमांऊ में इसे उत्योल, उतील, उतूल, त्योल और उतई कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व कृत पारस्पर गृह्यसूत्र में वर्णित 'उतूल' का उसी रूप में कुमांऊ में व्यापक प्रचलन अभी तक है।[1] उतूल या उत्योल परिपक्व हरेधान की बाली से निकले धान अथवा सूखे धान को भिगाकर शुष्क रेत या 'इस्र' में भूनने बनता है। ठंडा होने पर इसके छिलके को हल्के से कूट कर अलग कर लिया जाता है। यह च्यूड़े (चिउड़ा) का ही एक रूप है, इसमें भट्ट (देशी सोयाबीन), तिल, भुंगरा, अखरोट, गुड़ आदि मिला लिया जाता है। इसे उत्योल या उतिल कहा जाता है। भुना, शुष्क चावल आधारभूत द्रव्य होने के कारण बिना तिल आदि मिश्रित किये भी 'उत्योल' ही कहा जाता है।

उतूल, उतिल, उत्यौल, उतुल, उत्यौ, उतई आदि शब्द मात्र कुमांउनी नहीं रह सके। संस्कृत ने इसे ग्रहण किया यह पारस्कर गृह्य सूत्र, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र, महाभारत एवं वराहपुराण से स्पष्ट है। इसका प्रसार विश्वव्यापी है। लैटिन, अंग्रेजी, फ्रैंच, आदि अनेंक भाषाओं में 'उतिल' के रूप मिलते हैं। लैटिन में यह utilis (यूटिलिस/उतिलिस) बना और इसके द्रव्यवाची और भाववाची दोनों अर्थ ले लिये गये। लैटिन में इसका अर्थ उपभोग सामग्री अथवा उपयोगी दोनों है। यह शब्द लैटिन uti (उति) से विकसित है। जिसका अर्थ उपयोग करना या उपयोगी

१. डॉ० पांडुरंग वामन काणे ने गृह्यसूत्रों का काल ईस्वी पूर्व ६०० से ३०० वर्ष माना है।

है। इस उति/युति/युटि का मूल शब्द कुमांउनी उति/उतई (भूना हुआ, ऊष्मित) है, जिससे उतिल, और उत्योल शब्द विकसित हुए। यदि uti का उच्चारण 'युति' किया जाय तो भी उतिल युक्ति पूर्ण योग है। इसे आज की दृष्टि से नहीं उस काल की दृष्टि से देखा जाय जब 'उतिल' का स्वरूप बन रहा था। यही उतिल फ्रैंच के utile (जतिल/उतिल/इयुइतिल = उपयोगी, लाभदायक) शब्द बना भले ही इसका उच्चारण वे अपने ढंग से करते हैं परन्तु दोनों की आधारभूत वर्ण संरचना में कोई अन्तर नहीं है। फ्रैंच जतिल/इयुइतिल/इ उइतिल से ही अंग्रेजी utility (यूटिलिटि/यूटेलिटी/उतेलिति/उतइ लइति = उपयोगिता) शब्द बना। जिसकी कुमाउनी आधारित व्युत्पत्ति है– उतई + लइति = उति (भूने अन्न) के गुणों को जो लाता है या उनको धारण करता है अथवा जो उपयोगी, गुणकारी है। लैटिन में इसे utilitas (यूटिलिटास/उतइलि तास/उतिलइ तास) कहा गया है। इसका अर्थ उपयोग योग्य, गुणयुक्त, संतुष्टिदायी है। इसकी कुमाउनी आधारित व्युत्पत्ति है उतिलइ + तास = उतिल की तरह स्वादिष्ट (तास) अर्थात् गुणकारी। अन्य उच्चारणों की भी इसी ढंग से व्युत्पत्तियाँ है। प्राचीन फ्रैंच में यह utilite (यूटिलिटे/जतिलिते/ इयुइति लइत) = उपयोगी, पोषक के रूप में मिलता है। लोक में युति (uti) का प्रयोग जुति (जोतना) तथा जुटि (एक जुट करना, एकत्र करना, मिश्रण बनाना) रूप में भी होता है।

पारस्कर गृह्यसूत्र में वर्णित 'उतूल' का अर्थ आचार्य बलदेव उपाध्याय ने दास या नौकर दिया है। यह अर्थ मोनियर-विलियम्स के संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोष में भी दिया है। शब्दों का अर्थ सापेक्षिक अर्थात् परिस्थिति के अनुरूप लगाया जाता है। 'उतूल' शरीर के लिये आवश्यक है अत: इसे हम स्वामी भी कह सकते हैं, अथवा शरीर में रस बनकर सभी अंगो प्रत्यंगों की सेवा (पोषक तत्त्व पहुँचाना) करता है अत: सेवक या नौकर (servant) भी है। अन्तत: इसी के 'भाण्ड', बर्तन (utensil) भी बनते हैं अत: इस रूप में यह सेवक है। इसकी निर्माण प्रक्रिया हम लोक में देख सकते हैं, जैसा कि मंत्र में बताया गया है। कुछ लोग केवल लौकिक प्रक्रिया को ही प्रधान मानते हैं अत: वे सही व्याख्या नहीं कर सकते हैं। इसके लिये 'वैदिक' व्याख्या (जैविक विकास प्रक्रम) की आवश्यकता होती है, जिसे परंपरा से चले आ रहे 'शारीरिक भाष्य' का नाम दिया गया है। इसके प्रधान आधार पुराण हैं।

प्राचीन साहित्य की व्याख्या एवं उसके निष्कर्ष के बारे में एक और उदाहरण दिया जा सकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'अग्निपुराणम्' की भूमिका में डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य ने लिखा है– "५-११ अध्याय में रामावतार की कथा है।.....यह लक्षणीय है कि गुह का उल्लेख

(६/३२) रहने पर भी शबरी का कोई उल्लेख अग्निपुराण में नहीं मिलता।'[1] उक्त टिप्पणी से स्पष्ट है कि भूमिका लेखक पौराणिक इतिहास को राजाओं का ही इतिहास मान कर चलते हैं। तभी 'शबरी' को भी वे एक जीवित स्त्री के रूप में अग्निपुराण में खोजते हैं। शबरी का भौतिक आधार उसकी क्रियाओं से ज्ञात होता है कि वह राम को 'बेर' देती है। ये बेर लोक में प्रयुक्त 'बेर' नहीं वरन् वह बेर (कांटे) हैं जो तापस (राम) को प्रिय हैं। अर्थात् वे रसायन जो ऊष्मा का उत्पादन करते हैं, शबर या शबरी हैं। शबर का अर्थ भील पुत्र या लोध्र[2] होता है। यहाँ भील पुत्र का अर्थ भिलावा या झड़बेर है जो रंग आदि बनाने के काम आता है, यही कार्य लोध्र और इंगुदी का है। इसी आधार पर आयुर्वेद में वनस्पतियों के वर्ग बनाये गये हैं, जो इसे नहीं जानता है वह सही अर्थ नहीं लगा सकता है। आयुर्वेद में 'अभावे च' अर्थात् एक के अभाव में दूसरे का विकल्प शब्द सर्वत्र प्रयुक्त होता है। भील पुत्र इसलिये कहा जाता है कि वे शरीर में रंगों से गोदना बनाते हैं। ज्ञान को सुरक्षित रखने का यही वैदिक ढंग है कि लोक में किसी शब्द के अर्थ को खोज लिया जाय। शबर को धनात्मक आवेशयुक्त तथा शबरी को ऋणात्मक आवेशयुक्त रसायन जानना चाहिये।

अग्निपुराण (६/३२) में स्पष्ट कहा गया है कि राम इंगुदी वृक्ष के नीचे बैठे थे।[3] इसके अतिरिक्त शृंगवेरपुर शबर या शबरी से ही सम्बन्धित है, यहाँ 'शृंगवेरपुर'[4] का अर्थ वह स्थान है जहाँ से बेर के रसायनों से शृंग (शीर्ष, आगे) की ओर गति मिलती है।[5] 'इंगुदी' वृक्ष के नीचे बैठने का अर्थ ही है 'इंगुदी' की सेवाओं को ग्रहण करना। इसके अतिरिक्त लेखक ने स्वयं इस बात को लिखा है कि "प्रचलित अग्नि पुराण (जो मूलत: अग्नि वसिष्ट संवाद में है) अपने को 'विद्या सार' कहता है (१/६, १/७, १/१३)। इस पुराण में सभी विद्याएँ प्रदर्शित हुई हैं— यह ३८३/५२ में कहा गया है। अग्नि देवता से उपदेश पाने के बाद वसिष्ट स्वयं भी व्यास को कहते हैं कि 'मैं दोनों प्रकार के ब्रह्म को कहूँगा' (१/८)। इन कथनों से ज्ञात होता है कि इस पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है— 'नानाविध विद्यायें'"[6]।

उक्त विश्लेषण भी शब्दार्थ पर आधारित है। इसका गूढ़ अर्थात् वैज्ञानिक

---

*१. अग्निपुराणम्, पूर्व भाग, अनुवादक-तारिणीश झा, एवं डॉ० घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९९५। भूमिका: डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य, सम्पादक, पुराण सर्वभारतीय काशिराज न्यास, वाराणसी पृ० ७।*

*२. मोनियर एवं विलियम्स, संस्कृत-अंग्रेजी शब्द कोश।*

*३. गुहेन पूजितस्तत्र इङ्गुदीमूलमाश्रित:।। अ०पु० ६/३२।।*
*अर्थ : वहाँ (श्रृंगवेरपुर) निषादराज गुह ने भगवान की पूजा की। राम ने इंगुदी वृक्ष के नीचे आश्रय लिया।।*

*४. रामो रथस्थश्चीराढ्य: शृंगवेरपुरं ययौ।। अ०पु० ६/३१।।*
*अर्थ : राम चीरधारण करके रथ पर बैठकर शृंगवेरपुर चले गये।।*

*५. देखें- मोनियर-विलियम्स, शब्दकोश।*

*६. पूर्वोक्त, अग्निपुराणम्, भूमिका पृ० ३।*

पक्ष तमावृत्त है। द्विविध विद्याओं का संकेत सूतजी ने पहले ही (१/५) में कर दिया है।[1] इसके अनुसार शब्द-ब्रह्म और पर-ब्रह्म दो होते हैं, जिन्हें अथर्वेद में दो विद्या कहा गया है, यही संक्षिप्त संकेत है। पौराणिकों को इस संकेत से यह जान लेना होता है कि यह पुराण 'अग्नि पुराण' है अत: अग्नि से सन्दर्भ में ही आधारभूत कथनों की व्याख्या की जाएगी। यहाँ शब्द ब्रह्म 'अग्नि' नामक शब्द है, जो अक्[2] धातु से मूलत: व्युत्पन्न होती है तथा अक् के बार-बार ध्वनित होने से यही 'अग्' ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है, अत: यह 'अग्' ध्वनि ही शब्द (ब्रह्म) है। अब पर-ब्रह्म क्या है? अनुवादक अनेक शब्दाडम्बर करते हुए कहते हैं कि वह पर-ब्रह्म है जो अग्नि का नियन्ता और संचालक है। यह कहने की शैली पौराणिक है परन्तु वे यह बता पाने में समर्थ नहीं होते कि यह रहस्यमय पर-ब्रह्म है क्या? अथवा इसका भौतिक आधार क्या है? वे कुल मिलाकर परब्रह्म को ऐसा रहस्यमय बना देते हैं कि जैसे परब्रह्म अग्नि से भी कोई सूक्ष्म अथवा पकड़ में न आने वाला तत्त्व है। यदि हम श्रुति (लोक में देखना, सुनना, लौकिक क्रिया देखना) के आधार पर चलें तो अग्नि के सन्दर्भ में परब्रह्म वह तत्त्व हैं जो अक् या अग् की उत्पत्ति, वृद्धि और नियंत्रण का आधार है। लोक में यह तत्त्व लकड़ी या अन्य द्रव्य होते हैं जो अग्नि का आधार हैं। रासायनिक अक् या अग् धातु का आधार भी यही है, परन्तु वहाँ अक् की उत्पत्ति का आधार 'चकमक' पत्थर न होकर 'आक' शब्द से जाना जाने वाला आक का पौधा होता है। पुराणों में यह स्थिति परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित भी हो जाती है, अत: ये शब्द (शब्द-ब्रह्म एवं पर-ब्रह्म) रूढ़ रूप में एक निश्चित अर्थ नहीं देते हैं, इसे पुराणों के अनुरूप समझना होता है।

यदि व्यक्ति की चेतना प्रस्फुटित है, केवल रूढ़ शब्दों तक सीमित नहीं है, साथ ही महाभारत में अनेक स्थलों पर वर्णित कथा कि "मेरा हाथ ही वर्तन है, वही मेरा तकिया है" को समझते हैं तो 'उतिल' से पुन: अनेकानेक बने शब्दों को भी समझ सकते हैं। लैटिन utensile (यूटेन्सिले), फ्रैंच, अंग्रेजी utensile (यूटेन्सिल/ज्यूतेन्सिल/युतेन्सिल) 'उतिल' 'उतेल' से ही व्युत्पन्न शब्द हैं। इन शब्दों का मूल आधार 'उति/उतइ' है जिसे लै० में युति/उति (uti) कहा गया है।

---

*१. द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत्।*
*द्वे विद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुति:।। अ०पु० १/५।।*
*अर्थ: दो ब्रह्मों को जानना चाहिये- शब्द-ब्रह्म और परब्रह्म को। दो विद्याओं को जानना चाहिये ऐसा अथर्वेद में (भी) आया है।।*

*२. दियासलाई के प्रचलन के पूर्व कुमांऊ में अग्नि उत्पन्न करने का मुख्य स्रोत चकमक पत्थर और लोहे के टुकड़ों की घर्षण क्रिया होती थी। लोहे के टुकड़े को 'अक् पाड़ो' या अग्पाड़ो/पाड़ कहते थे। अक् चकमक में धारित अग्नि है जो घर्षण के कारण अक् शब्द के साथ उत्पन्न होती है।*

यूटेन्सिल वर्तन, भांड का नाम है जो किसी क्रिया को सम्पन्न करने के साधन या सेवक कहे जाते हैं। यूटेन्सिल की कुमांउनी व्युत्पत्ति इस प्रकार है utel = उतील/उतेल/उतइल + sil/sile = सिल, छिलइ (पीसने का) पात्र। अर्थात् वह पात्र या बर्तन कहा जाता है जो उतिल को उति (ऊष्मित) करता है। उतील बनाना एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है (यास्क का स्मरण करें) जिसमें भूनना, कूटना, पीसना, छानना आदि सभी क्रियायें सम्मिलित होती हैं।

भाषा के सम्बन्ध में यह अध्ययन अत्यन्त उत्साहवर्धक होने के साथ श्रम साध्य भी रहा है। कभी-कभी एक-एक शब्द की व्याख्या के लिए महिनों तक प्रतीक्षा करती पड़ती रही है। इससे एक प्रकार की निराशा भी कभी-कभी घेर लेती थी। लगभग पचास से अधिक भाषाओं का अध्ययन करने में उतनी ही प्रकार की मन: स्थितियों की धारणा करना एक कठिन कार्य रहा है। इसके अनन्तर कोई अज्ञात प्रेरणा इस कार्य में लगे रहने के लिए मुझे विवश सी करती रही है। अत: यह कार्य स्वयं मेरा न होकर किसी उच्चतर प्रेरणा का परिणाम है जो चाहते हुए भी इस कार्य से अलग नहीं होने देती है। इस लेखन का कोई आर्थिक लाभ नहीं है यह स्पष्ट है, क्योंकि ऐसे कार्यों के लिए कोई भी आर्थिक सहयोग देने के लिये तैयार नहीं होता है फिर भी निरपेक्ष भाव से अपने अन्दर के प्रश्नों के उत्तर में 'स्वान्त: सुखाय' की वृत्ति पर आरूढ़ रहकर यह लेखन कार्य किया है। अत: इस लेखन की प्रशंसा या आलोचना किये जाने के परिणामों के प्रति तटस्थ भाव का उदय हो जाना स्वाभाविक है।

जैसा कि इस युग में सर्वत्र दिखाई देता है कि प्रगतिशीलता और विज्ञान के नाम पर प्रत्येक व्यक्ति प्राचीन को अन्ध विश्वास कहकर उसे रौंदते हुए आगे बढ़ रहा है, परन्तु आगे कहाँ जाना है, यह न तो किसी वर्तमान विज्ञानवादी को ज्ञात है, न किसी विशिष्ट विद्वान को और न स्वयं जाने वाले व्यक्तियों को। विज्ञान ने पाखण्ड और अन्धविश्वास को दूर करने में एक ओर महत्त्वपूर्ण सहायता दी है तो दूसरी ओर वह स्वयं एक पाखण्ड और अन्ध विश्वास का जाग्रत स्वरूप बन गया है। विज्ञान के नाम पर स्वयं को, अपने आधार को मटियामेट करने की सर्वत्र गूंज है, उसी की सर्वत्र प्रशंसा है। अपनी भाषा के प्रति अरुचि व्यक्ति की हीनभावना का द्योतक है। वह विकास के नाम पर अंग्रेजी भाषा और शब्दों का ही प्रयोग करना प्रगति और सभ्य होने का मापदण्ड मानता है। अंग्रेजी को धारा प्रवाह बोलते हुए आज का व्यक्ति समझता है कि वह किसी 'महान ज्ञान' से सम्पन्न हो चुका है। ऐसी समझ के कारण ही वह इस ज्ञान से उत्पन्न प्रदूषण की चपेट में आ जाता है और सर्वत्र मूल्यों को तोड़ते रहने की 'पशु-प्रवृत्ति' के अधीन चला गया है। उसे इस बात का ज्ञान नहीं हो पाता है कि वह किसी भयंकर

पाश में फंस चुका है।[1] जिस अंग्रेजी भाषा को स्वयं अपना लक्ष्य ज्ञात न हो उसी के प्रदर्शन से प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को धन्य समझता है, तथा प्रत्येक के मस्तिष्क में यह बात घर कर गई है कि यह भाषा ही ज्ञान की एक मात्र शसक्त भाषा है। जबकि यर्थाथ में यह 'वैज्ञानिक उपभोगितावाद अर्थात् शूकर दर्शन' की एक मात्र विश्वव्यापी भाषा बन गई है।[2]

अंग्रेजी की यह अन्ध नकल सम्पूर्ण विश्व के काले अंग्रेजों को तब एक झटका देती है जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि जिस भाषा को वे सभ्यता का प्रतीक मान बैठे हैं उसके आधारभूत मूल शब्द भारतीय भाषाओं में है।[3] यहाँ पर कुमांउनी भाषा के माध्यम से इस बात को स्पष्ट किया गया है। जो लोग भारतीय भाषाओं को अज्ञानियों, मूर्खों, पशुओं और असंस्कृत लोगों की भाषा कहते हुए गर्वित होते हैं, उन्हें 'शब्द-विज्ञान' नामक यह कृति यह बताने में सक्षम है कि भारतीय भाषाएँ ही उनकी भाषाओं की जननी हैं। यह चाहे ग्रीक हो, लैटिन हो अथवा अंग्रेजी, फ्रैंच, जर्मन आदि हो। भारतीय भाषाओं के बिना किसी भी यूरोपीय भाषा की व्युत्पत्ति सम्भव नहीं है। यही नहीं हिब्रू, अरबी तथा अन्य अनेकों भाषाओं की व्युत्पत्ति भी हम भारतीय भाषाओं के आधार पर कर सकते हैं। इसका विवेचन इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में किया जाएगा, तभी एक पूर्ण चित्र उभर कर सामने आयेगा।

इस कृति का महत्त्व इसलिए भी है कि इस प्रकार का कार्य भाषा शास्त्र के क्षेत्र में विश्व में अप्रतिम है। अभी तक का तुलनात्मक भाषा शास्त्र (लिखित) ध्वनि, वर्णविन्यास, वाक्यविन्यास आदि पर आधारित रहा है। यह प्रथम कृति है जिसने संस्कृत, ग्रीक, लैटिन जैसी प्राचीन लिखित साहित्य वाली भाषाओं के साथ आधुनिक सभी लिखित साहित्यिक भाषाओं को आधार न बनाकर एक ऐसी भाषा को आधार बनाया है, जो हिन्दी की एक उपभाषा या बोली मानी जाती है।[4] इसका लिखित साहित्य नहीं के बराबर है, जो है भी वह अल्प है। यहाँ पर उस लिखित साहित्य का भी प्रयोग न कर केवल बोली (उच्चारण = श्रुति) के आधार पर ही सभी भाषाओं के साथ उसकी तुलना की गयी है। जहाँ तक विभिन्न भाषाओं के उच्चारण का प्रश्न है, इस पुस्तक में उस पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया

---

*१. अंग्रेजी शब्दों की दुर्गति के भारतीयकरण के दृष्टान्त के लिये देखें- "भारत के लोगों का संविधान एवं दर्पण" खण्ड तीन 'भाषा और संविधान'। इसमें अंग्रेजी शब्द लेजिस्लेटर, जस्टिस, जुडीशियरी का भारतीयकरण कैसे हो रहा है, इसको व्युत्पत्ति जन्य नकारात्मक व्यवहार से स्पष्ट किया गया है।*

*२. बेन्थम के उपयोगितावाद की तुलना जे०एस० मिल ने 'शूकर-दर्शन' से की है।*

*३. ये लोक भाषाएँ मूल रूप में प्राकृत हैं परन्तु संस्कृत की दार्शनिकता की छाया के कारण अंग्रेजी की तरह पतित नहीं हुई हैं।*

*४. अधिकांश उत्तर भारत की भाषाओं और बोलियों को 'प्राचीन हिन्दी' कहना उपयुक्त है। प्राचीन हिन्दी के अनेकों शब्द हमें दक्षिण की भाषाओं में भी मिलते हैं।*

है। प्राय: सभी भाषाओं (शब्दों) के अनेक प्रकार के उच्चारण उन-उन भाषाओं में भी हजारों वर्ष पूर्व के उच्चारण से भिन्न हैं। पुन: एक ही भाषा या बोली में भी एक शब्द को अनेक प्रकार के उच्चारण और वर्णसंयोजन के साथ बोला जाता है। किसी भी भाषा के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि जो उच्चारण वे आज किसी लिखित शब्द का करते हैं वही उच्चारण शुद्ध, वैज्ञानिक एवं अंतिम है। जिस उच्चारण को आज हम सही कहते हैं उसका तात्पर्य एक निश्चित उच्चारण को मान्यता देकर उसका समाजीकरण करना है। जिससे सभी लोग उस शब्द का एक ही अर्थ लगायें तथा लिखित रूप में भी उसी बनावट और उच्चारण को सरलता से ग्रहण कर सकें। इसी को मानकीकरण कहा जाता है, जिससे शब्द सुनते ही बिना श्रम के उसका अर्थ मस्तिष्क में व्याप्त हो जाता है। यह बात केवल लोक भाषाओं तक सीमित है। शास्त्रीय भाषाएँ जैसे संस्कृत, ग्रीक, लैटिन में उच्चारण एवं मात्राओं का मानकीकरण अधिक कठोर कर दिया जाता है, यह इसलिये कि शब्द की दिशा का ज्ञान हो सके। परन्तु यहाँ भी शब्दों का 'मानकीकरण' मशीनी निर्माण की तरह का मानकीकरण नहीं होता है, क्योंकि परिस्थिति, स्थान, काल के परिवर्तन से शब्दों की मात्राओं और उच्चारण में परिवर्तन हो जाते हैं। ग्रीक में अनेक शब्दों का स्थानीय प्रभाव के कारण भिन्न-भिन्न वर्ण संयोजन तथा उच्चारण मिलता है। संस्कृत में पाणिनि के बाद्र की संस्कृत में 'शिक्षा' के लिए छोटी 'इ' की मात्रा का प्रयोग होता है, जबकि अनेक उपनिषदों में इसके लिये बड़ी 'ई' की मात्रा का प्रयोग कर 'शीक्षा' शब्द मिलता है। दोनों शब्दों के उच्चारण में भिन्नता होते हुए भी अर्थ में समानता है। आज सर्वत्र 'शिक्षा' शब्द का ही मानक रूप में प्रचलन है। ऊपर 'उतूल' शब्द के भी अनेक प्रकार के उच्चारण दिये गये हैं और सभी उच्चारण प्रचलित हैं। अत: उच्चारण की विशेष आवश्यकता मानकीकरण के समय से होती है, शब्द बनने के काल में नहीं। चूंकि यह कृति दोनों कालों से सम्बन्धित है, अत: उच्चारण का मानकीकरण महत्त्वहीन हो जाता है।

इस कृति की एक अन्य विशेषता है कि एक ही शब्द के अनेक प्रकार और उच्चारण दिये गये हैं, यहाँ तक कि उन उच्चारणों को भी दिया गया है जो लगभग चार हजार वर्ष पूर्व में उच्चरित होते थे।[1] प्रत्येक भाषा-भाषी अपनी भाषा में उस शब्द को सरलता से ढूंढ सकता है, इसकी चिन्ता न करें कि उसकी भाषा में उस शब्द का अर्थ भिन्न है। यदि उच्चारण में कहीं समानता है, और कहीं नही तो उस शब्द का उच्चारण एक नये ढंग से भी किया जा सकता है। अर्थ की भिन्नता होने पर भी शब्द वही है, इसे निर्धारित करने के लिए शब्दों की व्याख्या

---

*१. ये शब्द और उच्चारण एशिया माइनर (टर्की) में मिली लगभग चार हजार वर्ष पूर्व की हित्ती या हित्ताइत भाषा के हैं। कुमांउनी में इतने प्राचीन शब्द उसी रूप में आज भी बोले जाते हैं।*

भी दी गयी है। शब्द पहचानने की एक विशिष्ट दृष्टि स्वत: विकसित हो जाती है। पुराणों में इसकी तुलना 'शब्द-वृक्ष' से की गयी है। जिस प्रकार जंगली, देशी और कलमी आम के वृक्षों अथवा फलों में भेद होते हुए भी हम उन्हें समान रूप से 'आम' के रूप में जान जाते हैं, उसी प्रकार मात्राओं के चक्कर में न पड़कर हम शब्दों के तुलनात्मक रूप को भी पहचान लेते हैं। इससे प्रत्येक व्यक्ति का भाषा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण विश्वव्यापी बन जाता है तब किसी भाषा-भाषी को हीनता से देखने की प्रवृत्ति समाप्त प्राय: हो जायेगी और भाषा के माध्यम से शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।[1] जिस प्रकार कम और छोटी पत्तियों वाले तथा घनी एवं बड़ी पत्तियों वाले आम वृक्षों को कोई भिन्न-भिन्न वर्ग के वृक्ष नहीं कहता है अथवा खट्टे आम को नीबू और पके आम को मत्वती (मौसम्मी) नहीं कहता है, वैसे ही उच्चारण भिन्नता, शब्द संयोजन में भिन्नता अथवा कम या अधिक वर्ण होने से भी शब्द के मूल स्वरूप को ज्ञात कर लिया जाता है।

डॉ० देवीदत्त शर्मा ने संस्कृत और ग्रीक में अधिक निकटता पाये जाने की बात स्वीकारते हुए अनेक शब्दों में परस्पर समानता दिखाई है। इन परस्पर सम्बन्धित शब्दों में सं० गो (गाय) और ग्री० बोउस; सं० तक्षन् 'बढ़ई' और ग्री० तेक्तोन तथा सं० पुर (नगर) और ग्री० पोलिस् भी हैं।[2] प्राय: सभी भाषाविद् इसी प्रकार की समानता होने की बातें लिखते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने भी ग्रीक शब्द 'तेख्ने' (=कौशल) के संस्कृत 'तक्षन्' का सम्बन्धी होने की बात लिखी है।[3] यदि इन शब्दों के अर्थ की समानता का ज्ञान न हो तो भाषाविद् यह नहीं कह सकते हैं कि इन संस्कृत और ग्रीक शब्दों में कोई निकट सम्बन्ध है। यदि इन शब्दों का आदिकालीन यांत्रिकी[4] से सम्बन्ध जोड़ा जाय तो ये शब्द (जैसे तक्षन् एवं तेक्तोन) भिन्न क्रियाओं के लिए प्रयुक्त हैं, भले ही अर्थ में समानता हो। गो और बोउस में अर्थ की समानता के अतिरिक्त अन्य क्या समानता है? ग्रीक और संस्कृत के तेख्ने/तेक्तोन और तक्षन् की समानता से अधिक समानता ग्रीक 'तेख्ने' और कुमाउनी तिख्यूनु, तिखो, तिख्यो, तिख्नु, तिख् में है। इन शब्दों का अर्थ है— तीखा करना, तीखा, तीखा किया हुआ, तेज करना, तेज या तीव्र स्वाद वाला हिन्दी में यह शब्द 'तीखा' है, परन्तु कुमांउनी की सहायता से बिना 'तीखा' और

---

*१. इसके लिये यह आवश्यक है कि यूरोपीय शैली के वैज्ञानिकों और भाषाविदों की कथित शोधों के निष्कर्षों कि सभ्यता अमुक स्थान से प्रारंभ हुई, मनुष्य इतने हजार या लाख वर्षों पूर्व विकसित हो गया था जैसी बातों पर बिल्कुल विश्वास न करें। इस प्रकार के शोध ठगों के प्रयत्न सिद्ध हो चुके हैं जो केवल प्रचार हेतु ऐसा करते हैं। जबकि तुलनात्मक भाषा शास्त्र इस कथित 'शोध' का खण्डन करने में सक्षम है।*

*२. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, हरियाणा साहित्य अकादमी, १९८४ पृ०३७.*

*३. भारत के प्राचीन भाषा परिवार एवं हिन्दी, खण्ड एक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८९, पृ० ३०.*

*४. निरुक्त वर्णित क्रिया सपन्न होने की यांत्रिकी जिससे शब्द के अर्थों का निर्धारण होता है।*

'तेख्ने' का सम्बन्ध जोड़ना सहज नहीं है।[1] इसी प्रकार 'पुर' और 'पोलिस' में अर्थ के अतिरिक्त कोई समानता दिखाई नहीं देती है।

तुलनात्मक भाषाविदों की एक विशेषता है कि वे 'स्रोत' से ही चलते हैं। जैसा यूरोपीय विद्वानों ने लिख दिया वही 'ब्रह्मवाक्य' है, वही उनका स्रोत है।[2] यूरोपीय विद्वानों को उद्धृत करते हुए डॉ० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि "हित्ती में एक ध्वनि ख् जो ह् लिखी गई है, मिलती है, वहीं भारत यूरोपीय भाषाओं में इसके स्थान पर कोई ध्वनि नहीं है, जैसे हित्ती खस्ताइ 'हड्डियां'= सं० अस्थि, ग्री० ओस्तेओन, लै० ओंस।"[3] पाश्चात्य विद्वानों तथा डॉ० चाटुर्ज्या का सन्दर्भ देते हुए डॉ० देवीदत्त शर्मा ने भी उपर्युक्त को यथावत दुहराया है।[4] खस्ताइ और अस्थि आदि शब्दों में शाब्दिक अन्तर के आधार पर उपर्युक्त निष्कर्ष निकाल लेना यह बताता है कि भाषाविद् शब्द और अर्थ की थोड़ी बहुत समानता के आधार पर ही शब्दों में समानता की घोषणा करते हैं, परन्तु शब्द की समानता और अर्थ की भिन्नता होने पर अन्तर के कारणों को खोजने का कोई प्रयास नहीं करते हैं। कुमाउनी में ख और ह से व्युत्पन्न दोनों प्रकार के शब्द पाए जाते हैं। 'खस्ता' शब्द कुमांउनी, भोजपुरी, अवधी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में व्यापक रूप में प्रचलित है। 'खस्ता' का अर्थ 'कड़ा' कठोर या ठोस है। हित्तियों ने इस अर्थ को 'हड्डी' के लिए 'रूढ़' बना लिया और भारतीयों ने 'पकवानों' के लिए। ग्रीक 'ओस्तेओन' को ओस् तइ (तुषार, ओस की तरह ठोस) + ओं (होना) से व्युत्पन्न है तथा लैटिन 'ओस्' शुद्ध रूप से भारतीय ओस (तुषार) के स्वरूप (ठोस) का द्योतक है। इसी प्रकार कु० में 'ख्वश' 'खोश' एक ही शब्द के दो रूप मिलते हैं। इनके दोहरे अर्थ हैं– रखना और छीनना। जैसे 'तै टांड़ में धोति ख्वश दे' (= उस टांड़ में धोती रख दो या खोश दो); 'तै क मुख में एक गाश् ख्वश दे तऽ' (= उसके मुँह मे एक ग्रास डाल दो तो/या ठूंस दो)। यह 'ख्' का प्रयोग है जिसे भाषाविद् कहते हैं भारतीय भाषाओं से विलुप्त हो गया है। अब 'ह्' का कुमाउनी में प्रयोग देखें– 'झट-पट हस्क्याइ ले तब जा्' (= जल्दी-जल्दी खा लो तब जाओ); 'झटा-झट हस्क्नौछ' (= झटपट निगल रहा है);'कस्याँ ह्वस्कूनौछ (= कैसे हसा-हस निगल रहा है)। ह्वस्कून/हस्कूनु खाने के एक विशिष्ट ढंग का नाम है

---

*१. हालांकि भूमिका में डॉ० रामविलास शर्मा ने घोषणा की है कि "यह पुस्तक आर्य, द्रविड़ आदि भारत के प्राचीन भाषा परिवारों के आपसी सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की लीक से अलग हटकर, हिन्दी का विवेचन प्रस्तुत करती है।" परन्तु उन्होंने ग्रीक 'तिख्ने' का हिन्दी प्रतिरूप नहीं दिया है।*

*२. इसे पश्चिमी अन्वेषण प्रवृत्ति के सन्दर्भ में नहीं वरन् भारतीय भाषाविदों द्वारा यूरोप के निष्कर्षों को जस का तस स्वीकारने से सम्बन्धित मानना चाहिये।*

*३. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० २७५.*

*४. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, पृ० ३३.*

जो सामान्य ढंग से हटकर जल्दबाजी में किया जाता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि यहाँ पर 'ख्' और 'ह्' का प्रयोग रखने खाने, ग्रहण करने के अर्थ का द्योतक है, चाहे लेकर रखा जाय या छीन (ख्वश) कर/चाहे टांड़ में रखें अथवा मुंह में रखें या उसे खिसकाकर पेट में रख लें। यह विश्लेषण स्पष्ट कर देता है कि पश्चिमी ढंग की भाषाई व्याख्याओं में अनेकानेक दोष हैं।

ध्वनियों के विकास के सम्बन्ध में पाश्चात्य भाषाविद्‌ों का मत बहुत विचित्र है। उन्हीं के मतानुरूप प्राय: सभी भारतीय भाषाविद् स्वयं को ढाल लेते हैं, उदाहरण के लिए डॉ० चाटुर्ज्या लिखते हैं "भारतीय यूरोपीय (भा०यू०) के मूलत: कण्ठ्य (तथाकथित 'तालव्य') "क, ख, ग, घ" का ऊष्म तालव्यों में परिवर्तित होने (उदाहरण "आ० भा०यू० * क्म्तोम् kmtom" = सौ का संस्कृत में "satam शतम्" अवेस्ता में "satəm सतॅम् प्राचीन स्लाव में" "suto सुतो" तथा लिथुआनी में "simtas शिम्तस्" की घटना को विद्वानों ने भा०यू० की दोनों उपगोष्ठियों– पश्चिम और पूर्वी-को लक्षणीय रूप से ठीक-ठीक विभाजित करती हुई विभाजन रेखा के रूप में माना है। पश्चिमी उपगोष्ठियों में कण्ठ्य ध्वनियाँ ज्यों की त्यों बनी रही, बदल कर ऊष्म नहीं हुई (दे० ग्रीक hekaton हे-कातोन, लाटिन centum केन्तुम; पूर्वीय उपगोष्ठी में उनका ऊष्मीभवन हो गया (दे० आर्य, स्लाव, बाल्तिक, आरमनी तथा अल्बानी भाषाएँ)[1]।

डॉ० देवीदत्त शर्मा लिखते हैं– "संस्कृत की चार ऊष्म ध्वनियों (श, ष्, स् ह्) में से केवल दन्त्य स् ही भारोपीय की साक्षात देन है। इनमें से श् तथा ह् का विकास भारोपीय तालव्य कण्ठ्य ध्वनियों (क्य् घ्य्) से तथा ष् का भारत आर्य काल में विभिन्न ध्वनि तरंगों के फलस्वरूप हुआ है।.....संस्कृत में इन ऊष्म ध्वनियों का विकास का रूप इस प्रकार है–

श: भारो० क्य् (k^) = सं० श् – भारो० क्य्म्तोम (k^mtom) > सं० शतम् 'सौ' : अवे० सतम् : ग्री० (हे) कतोन: लै० केन्तुम: प्रा० आइरिश-केत् (cet): वेल्श- कान्त (cant): गॉ० हुन्द: लिथु० सिमतस्: प्रा० स्लाव-सुतो: रूसी-स्तो।"

डॉ देवीदत्त शर्मा आगे लिखते हैं– "संस्कृत की तालव्य ध्वनियों के विकास का इतिहास भी बड़ा जटिल एवं रुचिकर है।.....यहाँ पर यह स्मरणीय है कि संस्कृत की तालव्य ध्वनियों का विकास भारोपीय की तालव्य ध्वनियों-क्य (k^), ग्य् (g^) तथा घ्य (g^h) से न होकर कण्ठ्य एवं कण्ठोष्ठ्य– क्~ क्व् (k~k^w) ग्~ग्व् (g~g^w), घ्~घ्व् (gh~g^wh) से हुआ है, यथा भारो० * क्वे (kwe) की आद्य ध्वनि बिल्कुल तालव्य न थी वरन् यह पूर्णतया कष्ठोष्ठ्य् स्पर्श ध्वनि थी, किन्तु आगामी स्वर ए के कारण इस कण्ठोष्ठ्य स्पर्श का तालव्यीकरण हो गया; क्योंकि संस्कृत में इसका विकास च् के रूप में पाया जाता है।

---

१. *भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० ३८-३९.*

जहाँ तक संस्कृत में च् के विकास का सम्बन्ध है, वह तो बिल्कुल स्पष्ट है.....च् का विकास अवश्य ही * क~क्व से हुआ है; क्योंकि तालव्य * क्य् का विकास स्पष्ट रूप से श् में देखा जाता है।.....भारो० क्व् संस्कृत में कहीं तो क् हो गया है, तथा कहीं च् यथा–

भारो० * क्वो, क्वि (kʷo, kʷi) (प्रश्नवाचक सर्वनाम) सं० कः 'कौन?' चिद् 'क्या?'.....'[1]

भाषाविदों के इस प्रकार के तार्किक निष्कर्ष किसी अलौकिक पुराण कथा में तो हैं परन्तु भाषा शास्त्र में ऐसे कथानक सम्भव नहीं हैं। एक पौराणिक आख्यान है कि देवी और महिषासुर के युद्ध में महिषासुर, महिष (भैंसा), बादल, पत्थरवर्षण, अग्नि, तूफान, सिंह आदि के रूप में बदल जाता है। ठीक इसी तरह का यह आख्यान है कि क्व् या क्, श् में बदल गया। पुराणों के आख्यानों को तो सिद्ध किया जा सकता है परन्तु भाषाविद् स्वयं जो कहते हैं सिद्ध नहीं कर सकते हैं। जब हम 'श्रुति' में जाते हैं तो प्रकृति में क, च और श की उपस्थिति स्वतंत्र रूप में देखते हैं। ऐसी स्थिति में क का च या श में बदलनें जैसा तर्क उठता ही नहीं है। इससे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि पहले लोक में 'श' शब्द था ही नहीं उसका आविष्कार केवल संस्कृतज्ञों ने किया। मनुष्य से भी पहले कव्वा और कोयल 'क' उच्चारण करते रहे हैं। चिड़िया 'च', शिटोल/श्योंटल (एक कुमांउनी चिड़िया का नाम) 'श' का उच्चारण करते रहे हैं। मोर/मुर्गा का नाम 'शिखी' इसी 'श' ध्वनि पर पड़ा है तथा कुद्ध नाग भी 'श' ध्वनि निर्गत करता है। ऐसी स्थिति में कौन कहेगा कि 'कव्वा' जब यूरोप से चला तो ईरान आते-आते 'चव्वा' हो गया और भारत आते-आते युद्धों की थकान के कारण 'शव्वा' हो गया। ऋषियों ने इसे देखा (ऋषिर्दर्शनात्) और 'श' शब्द अपनी वर्णमाला में जोड़ दिया। अतः 'श' शुद्ध रूप से भारतीय आर्यों की देन है। इस प्रकार 'क' से 'श' तक की परिवर्तन यात्रा का वृत्तान्त यूरोपीय भाषाविद् ही दे सकते हैं।[2] इस प्रकार की पाश्चात्य व्युत्पत्ति का मुख्य आधार 'सौ' के लिए प्रयुक्त शब्द हैं। आद्य भारत-यूरोपीय में 'कन्तोम' तथा संस्कृत में 'शत' शब्द होने तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में 'कन्तोम' आधारित शब्द प्रचलित रहने के कारण भाषाविदों ने ऐसी कल्पना की है। प्रत्येक भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं जहाँ एक अर्थ के लिये भिन्न-भिन्न ध्वनियों से प्रारंभ होने वाले अक्षरों का प्रयोग मिलता है, तब क्या यही कहा जायेगा कि पहली ध्वनि का अक्षर ही क्रमशः अन्य अक्षरों की ध्वनियों में बदल गया? यदि ऐसा है तो पुराणों में एक देव शक्ति के एक हजार आठ नाम

*१. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, पृ० ६०, ६२-६४.*

*२. भाषाविद इन प्रश्नों का कोई समाधान नहीं दे पाते हैं कि सं० में पक्व-पच् का युग्म है, पर नासिक्य-नासिश का क्यों नहीं है? क्वेर का सं० रूप श्वेर न होकर स्वैर; कु० में स्वेर, स्वैर, श्वेर (तीनों रूप) कैसे हो गए?*

दिये गये हैं उनमें से एक शब्द कब और कैसे अन्य १००७ ध्वनियों में परिवर्तित हुआ? इसे जब तक पाश्चात्य मतावलम्बी भाषाविद् सिद्ध न कर लें तब तक उनकी क् से श् बनने की कथा सिद्ध नहीं हो सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पश्चिमी शैली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन अवैज्ञानिक तथ्यों एवं अविश्वसनीयता से भरपूर है।[1]

समान अक्षरों, समान ध्वनि और समान अर्थ वाले शब्दों की व्युत्पत्ति सरल होती है। विश्व के भाषाविद् यह नहीं बता पाते हैं कि नितान्त भिन्न-भिन्न शब्द भी एक ही अर्थ कैसे देते हैं। यह समस्या डॉ० रामविलास शर्मा के समक्ष भी रही है। समान शब्दों में समानता ढूढ़ने के साथ-साथ यूरोप की ही अनेक भाषाओं में एक अर्थ देने वाले नितान्त भिन्न शब्दों को दिया है तथा भिन्नता के यथार्थ कारण का उल्लेख नहीं दिया है। उदाहरण के लिए डॉ० शर्मा ने 'काम करने' अर्थ के लिये इटालियन 'लवोरारे' तथा फ्रैंच 'त्रवाइये (र)' शब्दों को दिया है।[2] दोनों में कोई समानता नहीं दिखाई देती है। इस भिन्नता पर अन्य यूरोपीय भाषाविदों की तरह डॉ० रामविलास शर्मा ने निष्कर्ष निकाला है कि "मूल शब्द भण्डार की इस भिन्नता से पता चलता है कि लैटिन-परिवार की भाषाओं की लैटिन से भिन्न, अपनी संपत्ति भी रही है, उन्होंने लैटिन के अलावा अन्य भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किये हैं।"[3] इस प्रकार के निष्कर्ष कोई नये नहीं हैं यह यूरोपीय तथाकथित अन्वेषण या शोध शैली का सर्वप्रचलित रूप है। अब परंपरागत प्राचीन भारतीय प्रणाली का आश्रय लेते हैं। यहाँ पर यास्क का स्मरण कर लेना उचित होगा।[4] इटालियन लवोरारे की व्युत्पत्ति इस प्रकार है— लवो (लाना या लवाना) + रया रये = लवाना/लाने की क्रिया को करते रहना ही 'लवोरारे' है। इस व्युत्पत्ति का आधार कु० तथा प्राचीन हिन्दी (भोजपुरी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी आदि) है। फ्रैंच 'त्रवाइये (र)' की व्युत्पत्ति है— तरवाइये/तरवाइ यइ/तरवाइ यएर अर्थात् तराने, तैराने अथवा पार करने की क्रिया ही 'काम करना' है। पुराण भी इस व्युत्पत्ति का समर्थन करते हैं, राम को निषादराज ने पार कराने का 'काम' किया था। कृष्ण ने सत्यभामा के लिये पारिजात लाने/लवाने का काम किया था। लवाने/लाने तथा तराने की अनेकानेक यांत्रिकी हो सकती हैं। यहाँ पर एक मात्र धोती पर इस क्रिया की यांत्रिक व्याख्या करते हैं, इसी धोती पर सम्पूर्ण 'वैदिक यांत्रिकी' का निर्माण हो जाता है। धोतीं को लपेटकर एक दण्ड की तरह बनायें उसे पानी के बर्तन में डालें तो स्वतः पानी इस पार से उस पार तैरते हुए चला जाता है। इसी का नाम लवाना या लाना है क्योंकि जहाँ घर होता है वहीं बाहर (दूसरी ओर) से अन्न

*१. भाषाविदों का यह निष्कर्ष भी विश्वास योग्य नहीं है कि सं० ह का विकास भारोपीय *घ्य् (= ठंडा, हिम) से हुआ है, क्योंकि सं० में *घ्येय के स्थान पर हिम है। जबकि हिम गुणों से युक्त 'घी' के लिए कु० घ्यू, सं० घृत; लौकी आदि के लिए कु० घिया जैसे शब्द यहाँ पर विद्यमान हैं।*

*२. 'भाषा और समाज' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली १९९७ (सं०) पृ० १५६.*

*३. पूर्वोक्त, पृ० १५६।*

*४. सभी नाम (शब्द) क्रिया पर आधारित होते हैं (निरुक्त)।*

लवा कर लाया जाता है। इसी प्रकार दूसरे कोण को देखें लिपटी भीगी धोती को हाथ में लें उसे निचोड़ें पानी छनकर इस पार हो जाता है, इसे चाहे लवाने की क्रिया कहें या तराने की दोनों में कोई अन्तर नहीं है। इन दोनों क्रियाओं में जिन-जिन वस्तुओं के योग या योजन से क्रिया सम्पन्न होती है वही यांत्रिकी है। अत: विज्ञान के स्तर पर भी उपरोक्त व्युत्पत्तियाँ सही हैं। यास्क ने इसी आधार (आख्यात/क्रिया) को शब्द का आधार बनाया है।

अंग्रेजीकरण के अन्धानुकरण ने सामाजिक मूल्यों के भारतीय पक्ष को परे धकेल दिया है, क्योंकि अंग्रेजी शब्दों द्वारा अर्जित ज्ञान ही उनके लिए ऐश्वर्य एवं उत्पादन का एकमात्र स्रोत बना हुआ है। परिणामत: भारतीय संस्कार जो संस्कृत द्वारा निर्देशित होते थे, नैतिक मूल्यों को जीवित रखने में असमर्थ हो गये। अब प्रत्येक क्षेत्र के विशेषज्ञ विशेषज्ञता के प्रलाप से संक्रमित हैं और सर्वत्र अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार ही विकास, बुद्धि और ज्ञान का मापदण्ड बन गया है। इस स्थिति में यदि कोई व्यक्ति विश्व, राष्ट्र, राज्य, समाज, परिवार अथवा व्यक्ति के रूप में सुख, शांति और सम्यक व्यवस्था की आशा करता है तो वह एक कल्पनावादी बनकर सर्वत्र दीन-हीन एवं उपेक्षित हो जाता है।

अंग्रेजी या अन्य भाषाओं का विरोध करने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनसे दूर रहा जाय। यहाँ विरोध भाषा का नहीं वरन् किसी भाषा को श्रेष्ठ और अन्य को हीन मानने की प्रवृत्ति का विरोध है। यह तुलनात्मक अध्ययन उन लोगों को भी एक संदेश देता है जो अंग्रेजी या किसी विदेशी भाषा के नाम पर अपनी संस्कृति पर कुठारापात किये जाने का झण्डा लिये फिरते हैं। इनके लिए संदेश है कि भारतीय भाषाओं के शब्द ही अन्य भाषाओं में है, केवल उच्चारण एवं प्रयोग की शैली ही भिन्न होने से हम उन्हें अभारतीय अथवा विदेशी शब्द नहीं कह सकते हैं। अत: प्रत्येक भाषा के शब्दों को बिना किसी संकोच के यथावत स्वीकार करने से किसी भी प्रकार की हानि नहीं है। जहाँ आवश्यक हो वहाँ शब्दों में कुछ उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तन किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेजी, ग्रीक एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं में 'टेक्नीक' 'टेक्नीकल' शब्द हैं जिसका अर्थ उन साधनों का ज्ञान है जिससे कार्य में कुशलता लायी जाती है, इसे शिल्प, प्रविधि, तकनीक आदि कहा जाता है। भारतीय प्राय: 'टेक्नीक' के लिये 'तकनीक' शब्द का प्रयोग करते हैं 'टेक्नीक' को वे अंग्रेजी भाषा का शब्द मानते हैं। ऐसे लोगों से प्रार्थना है कि अपनी चेतना का विस्तार करें तो उन्हें ज्ञात होगा कि 'टेक्नी' शब्द मूलत: अधिकांश भारतीय भाषाओं में सदा से प्रयुक्त होता रहा है। इसका अर्थ लाठी, बेत, छड़ी या सहायक है। लोक कथाओं के अनुसार एक वृद्ध माँ अपने बेटे तक 'टेक्नी' की सहायता से ही भोजन पहुँचाती है। इसी 'टेक्नी' से अंग्रेजी के टेक्नी, टेक्नीक और टेक्नीकल आदि शब्द व्युत्पन्न हैं।

'टेक्नीकल' का 'कल' शब्द भी मशीन अथवा क्रिया (कल-कल) करने के उपकरण के रूप में संस्कृत सहित अन्य लोक भाषाओं में विद्यमान है। अत: ऐसे शब्दों को भारत की कोई भी भाषा उसी रूप में विदेशी कहे जाने वाले शब्दों को अपना सकती है।

इसी प्रकार जापानी 'इकेबाना' शब्द भारत में पहले से विद्यमान है, हम इसे एकहि+बाना (= वस्त्र या चोला, पहिरावा) कहते हैं। जापान में 'इकेबाना' अनेक फूलों को एक गुलदस्तें में सजाने की कला का नाम है। भारतीय शरीर रूपी एक ही बाने (बाहरी चर्म) में सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान को समाहित कर सजाने की प्रकृति की कला को एकहिबाना या एकैबाना कहते हैं। यह व्याख्या बताती है कि 'इकेबाना' का मूल भारत ही है।

यूरोपीय भाषाविदों ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के विकास और उसके अध्ययन से अनेकों सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, परन्तु इनसे भाषा की उत्पत्ति, विकास, अर्थ सम्बन्ध आदि समस्याओं का कोई समाधान न निकल सका है। भाषा के आधार पर यूरोपीय विद्वानों ने मानव सभ्यता के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकाले हैं वे संदिग्ध हैं, फिर भी भारतीय भाषाविद् उन्हीं के निष्कर्षों का वाचन करने में ही गौरवान्वित होते रहे हैं। डॉ० चाटुर्ज्या एक उद्धरण देते हुए लिखते हैं "अभी हाल में डब्लू० ब्रान्देन्श्ताइन (W. Brandenstein) ने भारत-यूरोपीयों के आदि निवास स्थान के रूप पर पर्याप्त प्रकाश डाला है..... ब्रान्देन्श्ताइन ने दिखाया है कि भाषाश्रयी प्रमाणों के आधार पर हम आद्य-यूरोपीयों के इतिहास को दो स्पष्ट कालों में विभाजित कर सकते हैं: (१) प्राथमिक काल- जबकि भारतीय-यूरोपीजन बोलियों की कुछ भिन्नता लिए हुए कई समूहों में विभक्त नहीं हुआ था, (२) उत्तरकाल-जबकि भारतीय-ईरानी शाखा भारतीय-यूरोपीय पितृकुल से अलग हो चुकी थी और भारतीय-यूरोपीयों की मुख्य शाखा अलग होकर नई जलवायु वाले किसी नये प्रदेश को चली गई थी। पहले काल के अन्तर्गत तो भारतीय-यूरोपीय में प्रचलित कुछ खास शब्दों और धातुओं के अर्थ 'जैसे मूल में' प्रचलित थे वैसे ही भारतीय-ईरानी शाखा के पूर्वजों में प्रचलित बोलियों में भी ज्यों के त्यों रहे; परन्तु दूसरे काल में इन शब्दों और धातुओं के अर्थ, भारतीय-ईरानी-बहिर्भूत अन्य शाखाओं में कुछ नये और भिन्न हो गए, जो भारतीय-ईरानी शाखा की बोलियों में नहीं मिलते। उदाहरणार्थ, आद्य-भारतीय-यूरोपीय में *gwer, *gwerau (*ग्वेर,*ग्वेरौ) का मूल अर्थ 'पत्थर' होता था; संस्कृत में उसके रूप 'ग्रावन्' (gra·van) का अर्थ कुछ संकीर्ण होकर '(सोमरस को) निचोड़ने का पत्थर' होता है, परन्तु भारतीय-यूरोपीय की अन्य शाखाओं में इस शब्द का अर्थ 'चक्की का पत्थर' और तत्पश्चात् 'हाथ-चक्की' हो गया (उदाहरणार्थ— प्राचीन अंग्रेजी cwern, आधुनिक अंग्रेजी quern; यह अर्थ कालान्तर में विकसित हुआ।.....

आद्य भारतीय-यूरोपीय की धातुओं और शब्दों के अर्थों में हुए विभिन्न परिवर्तनों का खूब बारीकी से अभ्यास करने के पश्चात् ब्रान्देन्श्ताइन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। वह यह है : अपनी आद्यावस्था में, आदिम भारतीय-यूरोपीय जन, किसी अपेक्षाकृत शुष्क गैरिक प्रदेश में निवास करते थे.....पालतू जानवरों में से गाय स्पष्टत: उन्हें सुमेरों से मिली थी (सुमेरी gud गुद्, उच्चारण gu= गु में अन्तिम व्यञ्जन का लोप लगभग २७०० वर्ष ई० पू० हो गया था, और आ० भा०यू० में उसका परिवर्तित रूप '*ग्वॉउस् *gwous' ले लिया गया था।.... आ०भा०यू० के प्राचीनतर स्तर की जांच से प्राप्त प्राकृतिक लक्षण बहुत अंशों में यूराल पर्वत के दक्षिण एवं पूर्व में स्थिति किरगिज के मैदानों पर घटित होते हैं।.....

इसलिये ब्रान्देन्श्ताइन के मतानुसार मध्य एशिया के भारतीय-आर्यों के प्रारम्भिक निवास-स्थान होने वाला मत ही पुन: कुछ परिष्कृत रूप में सबसे अधिक सत्य अनुमान सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार यूराल पर्वत माला के दक्षिण में स्थित सुविस्तृत प्रदेश ही आद्य भारतीय-आर्यों की मातृभूमि सिद्ध हुई प्रतीत होती है।[1]

प्राय: सभी भारतीय भाषाविद् ब्रान्देन्श्ताइन तथा इसी मत से मिलते-जुलते अन्य मतों को अत्यन्त विनम्र ढंग से शिरोधार्य करने और ज्ञान के एक नये युग में प्रवेश कर लेने जैसी चेतना से ओत-प्रोत होते हैं। ऊपर के सभी निष्कर्षों को यह कृति पूर्णत: ध्वस्त कर देती है। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि महान यूरोपीय और भारतीय भाषाविदों ने (शब्द के अर्थ को) केवल 'रूढ़' रूप में देखा है। यास्क के सिद्धान्त— सभी नाम (शब्द) क्रिया (आख्यात) पर आधारित होते हैं— का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। इन विद्वानों का यह निष्कर्ष भी ध्वस्त हो जाता है कि आद्य भारतीय-यूरोपीय शब्दों के अर्थ भारत- ईरानी-बहिर्भूत शाखाओं में बदल गये। इन भाषाओं में अब प्राचीन (आद्य) शब्द नहीं मिलते हैं। इस प्रकार के निष्कर्ष किस प्रकार की शोध और विज्ञान के सूत्रों से निकलते हैं इसे यही भाषाविद जानते रहे होंगे।[2] जहाँ तक आज की स्थिति है, भारत की अनेक भाषाओं में शब्द उसी रूप में मिलते हैं जिन्हें यूरोपीय विद्वान आद्य-भारतीय-यूरोपीय शब्द कहते हैं। कुमांउनी में आज भी ग्वेर, ग्वेरा, ग्वेरो, ग्वेरान, ग्वेरौन, ग्वेरीनु शब्द सर्वत्र प्रयोग में आते हैं। 'ग्वेर' शब्द की मुख्य यांत्रिकी, पर्वत श्रेणी का खिसकना या लुढ़कना है, जिसमें पत्थर मिट्टी एवं वह सभी वस्तुएँ हैं जो

---

*१. भारतीय-आर्यभाषा और हिन्दी, पद्मभूषण, डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८९ (सं) पृ० २३-२५।*

*२. पुराणों में कहा गया है कि जो वेदों (यहाँ पर शब्द और उसके अर्थ) के विज्ञान (शास्त्रीय) और श्रुति (व्यावहारिक) पक्ष को नहीं जानता है, वह केवल वेदों (यहाँ पर पद और प्रमाण पत्रों) को ढोने वाला कहा है।*

खिसकती हुई अपने नीचे की वस्तुओं और स्वयं को पीसती हुई नीचे पहुँचती हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का नाम 'ग्वेर' है। इसी से अन्य शब्द बने हैं, इसी यांत्रिकी के आधार पर कुमांऊ में चक्की में पीसते समय गिरते और एकत्रित आटे को ग्वेरीनु (गिरना), ग्वेर (ढेर) कहा जाता है। चूहा मिट्टी का ढेर लगा देता है, उसे भी 'ग्वेर' कहा जाता है। कोई वस्तु लुढ़क या बिखर जाती है तो उसे भी 'ग्वेरी गौछ' (लुढ़क गया है या लुढ़कते हुए चला गया है) कहा जाता है। संस्कृत का 'ग्रावन' शब्द 'ग्वेर' से विकसित नहीं है। 'ग्रावन' का अर्थ 'पीसने का पत्थर' हाने से ही इसे 'ग्वेर' से विकसित अथवा 'ग्रावन' से 'ग्वेर' का बनना मान लेना ठीक नहीं है; 'ग्रावन' शब्द की यांत्रिकी ग्वेर से भिन्न है। 'ग्वेर' यांत्रिकी से विकसित संस्कृत के शब्द 'गवेर', एवं 'गह्वर' हैं।

प्राचीन अंग्रेजी तथा वर्तमान अंग्रेजी के ब्रान्देन्शताइन द्वारा उद्धृत 'क्वेर्न' शब्द आज भी इसी उच्चारण के साथ कुमांऊ में बोले जाते हैं। अत: विद्वानों का यह निष्कर्ष भी ध्वस्त हो जाता है कि संस्कृत से सम्बन्धित भाषाओं में यह शब्द नहीं है। ये शब्द कुमांऊ में क्वेर्, कोर, क्वेरोन, क्वेराँ, क्वेर्न तथा क्वेर्नु के रूप में मिलते हैं। जो 'णकार' रूप में बोलते हैं वे न के स्थान पर ण कर देते हैं जैसे 'क्वरणु'। 'क्वेर' का हिन्दी रूप 'कोरना' है। कोरना, पीसना एक ही यांत्रिकी के भिन्न-भिन्न रूप हैं। 'कद्दूकस' में पेठा कोरा (कु० क्वरा) जाता है, यदि इस यांत्रिकी को उलट दें ('कद्दूकस' उल्टा कर नीचे से पेठा रखकर घिसें) तो यह चक्की की यांत्रिकी बन जाती है। यदि यूरोपीय अंग्रेजी में इसे चक्की का पत्थर या चक्की कहते हैं तो कोई अन्तर नहीं पड़ता है। क्वेर्न, कोरना यांत्रिकी से जिस अर्थ की धारणा करते हैं वही अर्थ व्यक्ति लगाता है, तथा समाज में रूढ़ हो जाता हैं। (यह क्रिया, संज्ञा या विशेषण में से कोई भी हो सकता है।) चूंकि 'क्वर्न' क्रिया से ध्वनि उत्पन्न होती है अत: संस्कृत में 'क्वण' (= ध्वनि/ध्वनि उत्पन्न करना) शब्द बना है।

'शब्द-विज्ञान' का आधार यास्क द्वारा 'निरुक्त' में उल्लिखित शाकटायन के मत या सिद्धान्त को बनाया गया है कि— सभी नाम (शब्द) क्रिया से व्युत्पन्न होते हैं।[1] यह सिद्धान्त स्वयं में पूर्ण और अद्वितीय एवं आश्चर्य जनक है। भारतीय विद्वानों और वैज्ञानिकों ने इसके प्रभाव से स्वयं को मुक्त रखकर भाषा और विज्ञान के क्षेत्र में एक महान भूल की है। हालांकि यत्र-तत्र वे इसका स्मरण कर लेते हैं परन्तु उस पर आचरण करना आवश्यक नहीं मानते हैं।[2] एक रोचक तथ्य पाठकों के लिये यहाँ पर दिया जाता हैं। भारत के भाषाविदों एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों ने वेद में वर्णित 'अष्टकर्णी गौ' की जैसी व्याख्याएँ की हैं, उन्हीं

*१. सर्वाणि नामानि आख्यात जानि, नि० १। ४। १।*

*२. डॉ० वी० के राजवाडे, डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा और डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने 'निरुक्त' को अवैज्ञानिक एवं कल्पना मूलक बताया है।*

के शब्दों में यहाँ पर उद्धृत की जा रही हैं–

मोनियर एवं विलियम्स ने 'संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोष' में अष्टकर्ण का अर्थ 'कान में अंकित चिन्ह' 'गाय के कान में अंकित चिन्ह', 'आठ कानों वाला' तथा 'ब्रह्मा का एक नाम' किया है। श्री वामन शिवराम आप्टे ने 'संस्कृत-हिन्दी कोश' में अष्टकर्ण का अर्थ 'आठ कानों वाला' तथा 'ब्रह्मा की उपाधि' दिया है। इस प्रकार शब्दकोशों में 'अष्टकर्ण' का केवल शाब्दिक अर्थ मिलता है, जो 'रूढ़-वृत्ति' पर आधारित है।

'लिपि का इतिहास' नामक अध्याय में डॉ० बाबूराम सक्सेना (एम०ए० डी लट्) लिखते हैं "भारतीय आर्य अंकों का लिखना जानते थे इस बात के तो और भी जोरदार सबूत हैं। ऋग्वेद में हजार अष्टकर्णी गायों के दान का उल्लेख आता है। यहाँ अष्टकर्ण शब्द का यही अर्थ सम्भव है कि जिनके कर्ण पर आठ का अंक अंकित था।"[1]

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी 'अष्टकर्णी गौ' के सन्दर्भ में लिखा है– "गायें इतनी अधिक होती थी कि उनकी पहचान के लिए उनके कानों के ऊपर नाना प्रकार के चिन्ह बनाये जाते थे। जिन गायों के कानों पर आठ का चिन्ह बना रहता था, वे 'अष्टकर्णि' कहलाती थी (ऋ० १०/६२/७)।"[2]

भारत में 'लिपि ज्ञान एवं लेखन कला' नाम के अध्याय में पद्मश्री डॉ० कपिल देव द्विवेदी लिखतें हैं– "ऋग्वेद में 'अष्टकर्णी' हजार गायों के दान देने का उल्लेख है (सहस्रं में ददतो अष्टकर्णः (ऋग्वेद १०/६२/७)। इसमें अष्टकर्णी से यह स्पष्ट है कि गायों के कान पर ८ अंक लिखा होता था।"[3]

वेदों के भाष्य करने वाले अनेक विद्वान प्रायः इसी यूरोपीय शैली के आधार पर वेदों की व्याख्या करते हैं। कहीं-कहीं तो भाष्य के नाम पर केवल हिन्दी या अंग्रेजी में शाब्दिक अनुवाद मात्र होता है। पद्मभूषण डॉ० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने 'अष्टकर्ण्यः' का अर्थ 'सर्वांग सुन्दर गौएं' किया है।[4] आचार्य पं० श्रीराम शर्मा ने 'अष्टकर्ण्य' का अर्थ 'लम्बे कान वाले अङ्गिरा' किया है।[5] पं० रामगोविन्द त्रिवेदी ने 'अष्टकर्ण्य' का अर्थ 'लम्बे-लम्बे कान' किया है।[6]

---

१. *'सामान्य भाषा विज्ञान', हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९७१ (प्रथम सं० १९४३), पृ० २५५।*
२. *'वैदिक साहित्य एवं संस्कृति' पंचम संस्करण (प्रथम सं० १९७३), शारदा संस्थान, वाराणसी १९९३, पृ० ४५६ तथा 'भारतीय साहित्य का अनुशीलन' शारदा संस्थान, वाराणसी, ११९५, पृ० ४५।*
३. *'भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र' विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, (चतुर्थ सं०) ११९४, पृ० ५२८, (प्र०सं० की भूमिका १९८०)।*
४. *ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जि० बलसाड), १९८५।*
५. *ऋग्वेद (सायण-भाष्यावलम्बी), संस्कृति संस्थान, बरेली, ११९२ (सं०)।*
६. *ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य), चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९९७।*

सायणाचार्य ने 'अष्टकर्ण्य' की व्याख्या करते हुए लिखा है "अष्टकर्ण्य: अष्टइति अशूव्याप्तौ निष्ठायां रूप विस्तृत कर्णा: उपलक्षणमेतत् व्याप्त सर्वायववा:" अर्थात् 'अष्टकर्ण्य' का 'अष्ट' अशूव्याप्तौ से व्युत्पन्न होने के कारण व्याप्त होने की प्रवृत्ति का द्योतक है, तथा अग्नि के रूप (तेज) से सम्पृक्त (परिनिष्ठित) सत्त्व द्रव्य (गो, अश्वादि) में 'कर्ण' की गुण-क्रिया की उत्पत्ति 'कर्ण' है। इन दोनों का संयुक्त रूप 'अष्टकर्ण' है। यह उपलक्षणा है इसका तात्पर्य है कि सत्त्व के सभी अवयवों (शरीर की आठों दिशाओं) में व्याप्त होने की क्रिया और शक्ति का नाम 'अष्टकर्ण' है।[1]

शाकटायन (निरुक्त) के सिद्धान्त के विपरीत आधुनिक विद्वान 'गो' का अर्थ 'रूढ़' रूप में प्रचलित गाय रूपी पशु लगाते हैं। जबकि निरुक्त में स्पष्ट किया गया है कि 'गो' और 'अश्व' आदि का अर्थ द्रव्य विशेष (सत्त्व) का नाम है।[2] अपनी इसी 'रूढ़' समझ के कारण वे वेदों की गति को समझने में असमर्थ रहते हैं। यह इतना उलझा दिया गया तथ्य है कि इसकी ग्रन्थियों को खोलने में बहुत व्यापक परिधि की परिक्रमा करनी पड़ती है। महाभारत शांतिपर्व (अ० ३००-३९२) में अष्टकर्ण की व्याख्या 'योग' और 'सांख्य' के आठ तत्त्वों के रूप में की गयी है। पुराणों में 'गो' का एक नाम पृथ्वी भी है। वैदिक साहित्य में पृथ्वी का अर्थ उसके विकार (वनस्पति) से लिया गया है। वृक्षों से प्राप्त रस जिनमें पृथ्वी के सभी रस (तत्त्व/सत्त्व) होते हैं, को ही यथार्थ में 'गो' कहा जाता है।[3] जिस प्रकार 'गो' के दुग्ध आदि को 'गोरस' कहा जाता है वैसे ही पृथ्वी रूपी गौ से प्राप्त रस भी गोरस ही कहे जाते हैं। शब्द 'गोरस' में आज के 'सभ्य जंगली' को अत्यधिक पिछड़ेपन की गंध आती है। उन्हें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि वैदिक ज्ञान एवं शब्दावली जैविक विकास का ज्ञान है अत: बिना 'रूढ़' नामों के इतने विशाल ज्ञान को आज तक जीवित रख पाना सम्भव न था। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण भाषाओं का विकास 'गो' पर ही आधारित दिखाई देता है भले ही प्रथम दृष्टि में यह हमें नहीं दिखाई दे। यह 'गो' क्या है? इसका इतिहास अन्तत: 'डाइनासौर'

---

*१. यहाँ 'कर्ण' का अर्थ तब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक कि 'हिरण्य अण्ड' यांत्रिकी से हम परिचित नहीं होते हैं। अण्ड के सत्त्व में अग्नि की तीव्रता से वह 'कर्ण' (कांटा/काटे की चुभन/कांटे की तरह प्रविष्ट होने का गुण) की तरह दिशाओं की ओर प्रसारित होता है। ये दिशाएँ भी 'कर्ण' कही जाती हैं। कांटे की तरह चुभन ही कान की स्पर्श शक्ति है अत: यह 'कर्ण' (कान) भी है। यही 'विस्तृत कर्ण' का अर्थ है जिसमें कर्ण के तीनों अर्थ निहित हैं। इसे केवल शाब्दिक रूप से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। सायण भाष्य की इसी जटिलता के कारण पाश्चात्य एवं परंपराप्रिय व्याख्याकार चक्करघिन्नी खा जाते हैं। 'व्याप्ति' के लक्षणों की आगे व्याख्या की गई है।*

*२. (निरुक्त १/१ '१४)।*

*३. गो, पृथ्वी एवं अदिति के परस्पर सम्बन्धों के आधार पर (निरुक्त १/१/१४; १/५/१७; १/२/२) 'गो' को पृथ्वी इसलिये कहते हैं कि उस पर लोग चलते फिरते हैं (निरुक्त १/२/२)। इसके लिये पुराण की इस कथा को देखना चाहिये कि पृथ्वी का एक नाम 'मेदिनी' इसलिये पड़ा क्योंकि यह एक असुर के मेद से युक्त हो गयी थी।*

युग तक चला जाता है। पृथ्वी का नाम 'मेदिनी' पड़ने की पुराण कथा इसी से सम्बद्ध है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आधार पर इसे प्रमाणित किया जा सकता है। कुमांउनी में 'डायनासौर' से मिलता जुलता शब्द 'डैनासौड़' है जिसको पुराण कथाओं से जोड़ दिया जाता है, शाब्दिक रूप से इसका अर्थ है 'उड़ने वाले (डैना=पंख) जन्तुओं का निवास स्थल' 'पंखों का विस्तार' और 'डैनासुर' (=पुराण कथाओं का नायक)। इस प्रकार के सूत्र बनाते हैं कि मूल 'गो' यही 'डाइनासौर' है जो दो भागों आकाशचारी और स्थलचारी में विभक्त हो गये।[1] यही युग पृथ्वी में आगे के विकास का मूल है। अरबों वर्ष पूर्व के 'डाइनासोर' तो अब न रहे परन्तु उनके बीज आज भी मनुष्य में विद्यमान हैं। इसे व्यक्ति के एक छत्र राज्य करने की दानवी प्रवृत्ति में देखा जाता है। हालांकि यह प्रकरण सन्दर्भ के बाहर चला गया है परन्तु यह इसलिये आवश्यक है कि जिससे आज का 'सभ्य-जंगली' यह समझ सके कि हम प्राचीन ज्ञान को आज की शैली में प्राचीन शब्दों के द्वारा ही व्याख्यायित कर सकते हैं। अत: इन शब्दों को पिछड़ेपन का द्योतन, साम्प्रदायिकता या धर्म विशेष से सम्बद्ध नहीं मान लेना चाहिये।

ऋग्वेद की 'अष्टकर्ण्य' से सम्बन्धित ऋचा (१०/६२/७) की यांत्रिकी का संकेत महाभारत, शांतिपर्व (२०२/१८-२०) में हिरण्यगर्भ तथा विश्वरूप के द्वारा दिया गया है। हिरण्यगर्भ को 'हिरण्यअण्ड' भी कहा जाता है, इसी यांत्रिकी के आधार पर 'अष्टकर्ण्य' की व्याख्या की जाती है। 'अण्ड' के रसायन (गो) जिस प्रकार आठों दिशाओं में तब प्रवृत्त होते हैं जब उनमें योग की आठ विशेषताएँ[2] विकसित हो जाती हैं, तभी वह स्वयं व्याप्ति गुण से युक्त होता है,
इसका अर्थ है कि वह स्वयं एक स्वतंत्र यांत्रिकी (autonomos= आठो नामोउस = आठ पादों से युक्त - कु० उच्चारण के आधार पर) बन जाती है जो ब्रह्माण्ड में चक्षु (तेज), कर्ण (स्पर्श) आदि गुणों के माध्यम से व्याप्त हो जाती है। इस प्रकार 'अष्टकर्ण्य' के दोहरे अर्थ हैं। इस यांत्रिकी का नाम ही शरीर ब्रह्माण्ड कहा जाता है। जो व्याप्ति के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त होती है। जो लोग वैदिक यांत्रिकी को समझते हैं वे सायणाचार्य के भाष्य को भी समझते हैं। यह भाष्य इसी यांत्रिकी पर आधारित होने के कारण पूर्णत: वैज्ञानिक है अत: शब्दों के हेरफेर में न पड़कर यांत्रिकी के अनुसार अर्थ लगाना चाहिये। सायणाचार्य ने इस ऋचा की व्याख्या

---

*१. अंग्रेजी COW (काउ) का कुमाउंनी उच्चारण 'काव्' है जो कव्वे के लिये प्रयुक्त होता है। लोक में गले की घण्टी को कव्वा कहते हैं उसी को योग और संस्कृत में 'गो' कहते हैं। यह भिन्नता और एकता बताती है कि पक्षी और गाय मूल रूप में 'डाइनासोर' रूपी 'गाय' थे। सुमेरियन भाषा में गाय को 'गुद्/गू' कहा जाता था। कुमांऊ में 'गुद्' का अर्थ 'बीज/अन्न के दाने' है। यह बात स्पष्ट बताती है कि डाइनासौर ही मूल गाय या 'बीज' है। जहाँ से सम्पूर्ण जैविक विकास हुआ है। यही कारण है कि 'गो' को जैव रसायन शास्त्र का 'बीज' माना जाता है।*

*२. देखें महा० शा०प०, ३१६/७ तथा अनु० प०, अ० १४५ (दाक्षिणात्य पाठांश)।*

में 'अंङ्गिरस' का नाम भी दिया है। इसे भी पुराणों ने कथा यांत्रिकी द्वारा समझाया है।[1] यह 'अष्टकर्ण्य' हिरण्यगर्भ के विस्तार का अगला चरण है जो आठ गुणों युक्त कहा जाता है। जब इसमें योग और सांख्य[2] के अनुरूप आठों चरणों के गुण उत्पन्न हो जाते हैं तभी इसमें व्याप्ति के गुण आते हैं।[3] हिरण्यगर्भ को ही यहाँ ब्रह्मा भी कहा गया है। ब्रह्मा का सम्बन्ध पुराणों ने 'गो' से जोड़ा है, इसका अर्थ है कि सृष्टि करने की प्रवृत्ति का नाम ब्रह्मा है तथा इस अमूर्त विचार को मूर्त रूप देने का साधन (माध्यम) 'गो' है।[4]

उपर्युक्त जटिल तथा कभी-कभी परस्पर विपरीत लगने वाली व्याख्या एवं उद्धरणों के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिसमें (द्रव्य, वस्तु) अष्ट (व्याप्ति के आठ) गुण हों और वह आठों दिशाओं को व्याप्त करता है, वही 'अष्टकर्ण्य' है।

शब्द विज्ञान नामक यह पुस्तक अनेक बाधाओं के उपरान्त इस रूप में आ सकी है। इसमें शब्दों को वर्णक्रम के आधार पर नहीं रखा गया है। यह कृति समय और साधनों के बंधन से मुक्त नहीं है। शासन अथवा किसी अन्य से इस कार्य में किसी भी प्रकार के सहयोग की अपेक्षा नहीं हो सकती है क्योंकि आज सभी कुछ 'व्यापार' हो गया है और यह कृति व्यापार की सीमा से परे है। यदि इसमें व्यापार वृत्ति को घुसपैठ का अवसर मिले तो यह स्वयं अपनी कांति को मलिन कर देगी। अत: व्यापार वृत्ति के बिना अपनी क्षमतानुरूप इस कार्य को करते रहने

---

*१. देखें- महाभा० शा०प० ३०२/१७-२९,३०६/२७-३०, ४३,४४,३०७/७,४४।*

*२. देखें- श्रीमद्भागवत् द्वितीय खण्ड, नाभाग की कथा, अ०४ तथा रन्तिदेव की कथा अ० २९।*

*३. उदाहरण के लिये इस 'गो' रूपी रसायन में योग के यम, नियम से परिपक्वता आती है। इससे उनमें गमन शक्ति का विकास होता है। आसन का अर्थ यहाँ पर एक धुरे का निर्माण है जिस पर सम्पूर्ण यांत्रिकी टिकी रहती है, 'रूढ़' अर्थ में इसे हम रीढ़ या ढांचा/कहते हैं (वैदिक आसन इस लौकिक आसन (आधार) से कुछ भिन्न होता है)। यहाँ आसन का अर्थ है एक निश्चित स्थान जो आधार हो और जहाँ से दिशाओं को गमन और वहाँ से आसन (आधार) तक आगमन हो सके। इसे पुराणों में 'गो' के बन गमन और सायंकाल गोष्ठ में आ जाने के प्रतीक रूप में वर्णित किया है। जब तक आसन (आधार भूत साधन) दृढ़ न हो इसमें आठों गुणों से युक्त स्वतंत्र यांत्रिकी के गुण उत्पन्न नहीं होते हैं। यदि योग के इन तीन पादों (क्रमों) को राज्य यांत्रिकी में लागू किया जाये तो वहाँ थोड़ी सी भिन्नता आ जाएगी। यहाँ पर यम, नियम का अर्थ विधि का ज्ञान और विधि के प्रति निष्ठा के गुणों से व्याप्त होना अर्थ लगेगा। आसन का अर्थ देश में आधारभूत साधनों की बहुलता एवं स्थिरता है, तथा उन पर आधारित आगे के विकास और आधारभूत विकास के मध्य परस्पर व्याप्ति के गुणों का विकसित होना ही यहाँ पर आसन सिद्धि का अर्थ लगता है। भारत में इसका ठीक उल्टा है यहाँ आधारभूत साधनों की स्थिरता एवं ज्ञान आदि अन्य देशों के हाथों में है। ऐसे में उच्च पदों और आधारभूत पदों के मध्य व्याप्ति तत्त्व के उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। यह बात यहाँ पर यह बताने के लिए लिखी जा रही है कि प्राचीन भारत के ज्ञान को अनेक क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है। इसे पोथियों में ढोते रहने की अपेक्षा, इसको व्यावहारिक रूप में अपनाया जाना चाहिए (जो योग है वही सांख्य है— महा० शा०प० ३०७/४४)।*

*४. ब्राह्मण और 'गो' का कुल एक है, पर ये दो रूपों में विभक्त हो गये हैं। एक जगह मन्त्र स्थित होते हैं और दूसरी जगह हविष्य।। महा० अनु० प० ५९/२२।।*

से ही सही परिणाम और तथ्य हमारे समक्ष आ सकेंगे, भले ही इसमें विलम्ब हो। इसमें किसी भी प्रकार की मिलावट का प्रयास नहीं किया गया है। विज्ञान के धरातल पर तथ्यों की भली-भांति परख करने के बाद इसे लिखा गया है, फिर भी मानवीय क्षमता के सन्दर्भ में भूल रह गयी हों तो उन्हें इसमें दी गयी रीति के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित कर लिया जाना चाहिये। व्याख्या या निरुक्ति के अनेक मार्ग हैं ऐसा नहीं कि यही अंतिम है। अत: यदि अपने ढंग से भी शब्द की निरुक्ति और उसके अर्थ में साम्य बैठता है तो उसे स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, परन्तु इसका विज्ञानवाद (क्रिया) पर आधारित होना आवश्यक है।

भाषा शास्त्र एक नीरस एवं उबाऊ विषय है ऐसा प्राय: सभी भाषा शास्त्री मानते रहे हैं। संस्कृत भाषाविद् पूर्व से ही इस मत के प्रवर्तक रहे हैं। मुझे तुलनात्मक भाषा शास्त्र के स्तर पर किसी भी प्रकार की नीरसता का बोध नहीं हुआ, हाँ विषय के अति विस्तार में चले जाने के कारण इसे न समेट पाने की छटपटाहट सदा बनी रही। एक भाषा के शब्द को विश्व की अनेकों भाषाओं में ढूढंना एक जिज्ञासा पूर्ण रुचिकर कार्य है। इसमें सदा अगले शब्दं के आने की उत्सुकता एवं उसकी व्युत्पत्ति की विशिष्टता तथा उस शब्द की उत्पत्ति की आधारभूत यांत्रिकी का विश्लेषण एक नवीनता का संचार करती रहती है। आदि स्रोत (मूल प्राकृत) से आज तक विकसित भाषा के सन्दर्भ में पं० किशोरीदास वाजपेयी ने एक रोचक कल्पना की है– "यदि ऋग्वेद के निर्माण-काल के किसी जन को इतना लम्बा जीवन मिल जाता कि आज हम लोगों के बीच होता, तो उसे उस मूल भाषा में और आज की भाषा (हिन्दी) में कुछ अन्तर मालूम ही न देता। इतने लम्बे जीवन में वह अपनी मूल भाषा को भूल भी चुका होता। एक सपने की सी याद रहती उसे कि पहले कुछ ऐसा बोलते थे। परन्तु हमें कितना अन्तर दिखाई देता है?"[1] मुझे प्रत्येक भाषा में कुछ-कुछ इसी प्रकार की अनुभूति होती है, परन्तु इसमें मुझे उल्टा चलकर उस स्थिति में पहुँचना होता है जब अपनी भाषा के किसी शब्द विशेष को कोई व्यक्ति विशेष लटके, झटके या शैली में बार-बार उच्चारित करता होगा जिससे शब्द के अर्थ और ध्वन्यात्मक तारतम्य में समानता लायी जा सके। किसी भाषा की उच्चारण शैली से परिचित होने के बाद उस भाषा का प्रत्येक शब्द कुमांउनी में ढल जाता है। इससे कुमांउनी के माध्यम से आदि कालीन भाषा के स्तर को छू लेने की अनुभूति बहुत विचित्र एवं स्वप्न की तरह होती है।

एक ही शब्द से भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न अर्थ कैसे निकाल लिए जाते हैं, इसका उदाहरण हम पहले 'ग्वेर' और 'क्वेर' के सन्दर्भ में दे चुके हैं। विभिन्नता को पुराण अपने ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। पौराणिक कथाओं का

---

१. *'हिन्दी शब्दानुशासन' नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सम्वत् २०१४ वि० पृ० ५।*

आधार जैविक यांत्रिकी होने के कारण पुराणों के रहस्यों को उसी के अनुरूप समझना आवश्यक होता है। भाषा विज्ञान में वैदिक और पौराणिक जैविक विकास यांत्रिकी की विशिष्ट दृष्टि ने भी इस विषय को रोचक बना दिया है। 'कहानियों का समुद्र' (Ocean of Story) के लेखक डाक्टर गेस्टर (Gaster) विश्व की पौराणिक और अद्भुत कथाओं एवं आख्यानों का स्रोत भारत को मानते हैं।[1] पश्चिमी विद्वानों सहित भारतीय चिन्तक इन पुराणों को न समझ पाने के कारण उनके आख्यानों को हास्यापद, अविश्वसनीय अथवा अकल्पनीय मानते हैं। ये विद्वान लौकिक राजाओं, व्यक्तियों के इतिहास की तरह का इतिहास पुराणों में खोजते हैं जब इसके प्रमाण उत्खनन आदि के रूप में इन्हें नहीं मिलते हैं तो पुराणों की उपेक्षा कर देते हैं। परन्तु जो लोग जानते हैं कि पुराण वैदिक-विज्ञान (सृष्टि-विज्ञान) की विस्तृत व्याख्यायें है न कि लोक विकास की उन्हें पुराण कथाओं में कोई सन्देह नहीं होता है और वे शैली से भ्रमित न होकर यथार्थ को जान लेते हैं और 'अष्टकर्ण' की व्याख्या 'कान में आठ अंक चिन्हित गायें' नहीं करते हैं।

इस सम्पूर्ण कृति को ज्ञान की केवल एक विधा से नहीं समझा जा सकता है, न ही निष्कर्ष निकालने की वर्तमान पश्चिमी शैली से, जो शब्द का अर्थ रूढ़ रूप के आधार पर करते हैं। इसे समझने के लिए आवश्यक है कि इसी में कहे गये शब्द चित्रों के साथ स्वयं को जोड़ लें और अपने 'महानज्ञान' को थोड़ी देर के लिये भूल जायें। ऐसा इसलिये कि हम अपने वाह्य जगत के अभ्यास के कारण 'शब्द' को स्थूल पदार्थ का प्रतीक मानते हैं। यह अभ्यास, आदत या रूढ़ि हमें अन्य नवीन शब्दों को तुरन्त ग्रहण नहीं करने देता है। निश्चित उच्चारण को लगातार सुने जाने के अभ्यास के कारण ही उसी शब्द में थोड़ी सी उच्चारण भिन्नता आ जाने पर हम उसे दूसरा शब्द समझ बैठते हैं, जैसा कि ऊपर 'उतूल' शब्द के लिए प्रयुक्त अनेक शब्दों और उच्चारणों में देखा जा सकता है। यास्क ने इस रूढ़ या अभ्यासजनित शब्द के सिद्धान्त को 'गार्ग्य' और अन्य वैयाकरणों का मत कहा है।[2] इसे रूढ़ि (अभ्यास पर आधारित) मत भी कहा जाता है। पाश्चात्य एवं आधुनिक भारतीय भाषाविद इसी सिद्धान्त के अनुरूप अर्थ करने के कारण शास्त्रीय ग्रन्थों की विवेचना नहीं कर सकते हैं। इस लेखन में इसी प्रथम सिद्धान्त (सभी शब्द क्रियाजनित होते हैं) का सर्वत्र प्रयोग किया गया है। यथार्थ में प्रथम सिद्धान्त ही दूसरे सिद्धांन्त का भी आधार है।

जहाँ तक भाषाओं के सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक पक्ष की बात है संस्कृत

---

*१. संस्कृत साहित्य का इतिहास ए०बी० कीथ (हि०अनु०) मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६९, प्राक्कथन पृ० ८।*

*२. न सर्वाणि गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके = (सब शब्द आख्यातज) नहीं होते ऐसा गार्ग्य का मत है और कुछ अन्य वैयाकरण भी ऐसा मानते हैं। निरुक्त १/४/१।*

ही एक ऐसी भाषा है जिसका निर्माण या विकास ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और विकास के आधार पर हुआ है। यह भारत की ही नहीं वरन् विश्व की सभी भाषाओं की 'संस्कारित' भाषा है।[1] अन्य सभी भाषाएँ प्राकृत या लोक भाषाएँ हैं, वे केवल दैनिक उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति की साधन मात्र है।[2] विश्व की एक मात्र भाषा संस्कृत है जिसका अपना एक दर्शन है, जो 'एकोऽहम्' से 'बहुस्याम्' (विकास) तथा 'वृत्ति निरोध:' (पुन: उस एक में मिल जाना) के दर्शन पर आधारित है।[3] इन भाषाओं को प्राकृत इसलिये भी कहा जाता है क्योंकि इनके उच्चारण स्पष्ट न होकर मिश्रित होते हैं। यहाँ पर मिश्रित से तात्पर्य है कि उनके उच्चारण में जल, पृथ्वी, वायु अथवा अग्नि तत्त्वों में से किसी एक की अथवा एक से अधिक तत्त्वो की प्रधानता रहती है। इसके विपरीत संस्कृत भाषा का अपना दर्शन होने के कारण उसका आधार नितान्त वैज्ञानिक है।[4] संस्कृत शब्द के उच्चारण में 'आकाश तत्त्व'[5] पर जोर देती है, जो शब्द की उत्पत्ति का एक मात्र आधार पुराणों द्वारा घोषित किया गया है। हालांकि संस्कृत में भी अन्य तत्त्वों का मिश्रण है परन्तु अधिकता आकाश तत्त्व की है। इस अर्थ में भी संस्कृत भाषा को संस्कारित भाषा कहा जाता है।

संस्कृत को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए लोक भाषाओं का ज्ञान भी आवश्यक है, जैसा कि हम 'उतूल' शब्द की व्याख्या में देख चुके हैं। अत: प्राकृत या लोक भाषाएँ संस्कृत की विरोधी नहीं वरन् उसकी पूरक अथवा आधार है। इन्हीं आधारभूत भाषाओं को संस्कारित कर संस्कृत का विकास या जन्म हुआ है। यथार्थ में संस्कृत सिर के बल खड़ी भाषा है जबकि विश्व की अन्य

---

*१. संस्कृत के विद्वान भी इस तथ्य से अनभिज्ञ है। वे संस्कृत को संस्कारित भाषा कहते हुये उसी से भारत की अन्य भाषाओं की उत्पत्ति मानते हैं। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' स्वयं यह बात कहती है कि इसका 'अष्ट' शब्द व्याप्ति का द्योतक है तथा 'अध्याय' का अर्थ पाद, क्रम या कर्ण है। इस प्रकार यह भी अष्टकर्ण (ऊपर देखें) की तरह व्याप्ति के गुणों से युक्त है। अत: इसमें विश्व की सभी भाषाएँ व्याप्त हैं तथा सभी अन्य भाषाओं में संस्कृत व्याप्त है। केवल इसे देखने की विशिष्ट दृष्टि की आवश्यकता है।*

*२. दर्शन विहीन अंग्रेजी को भारत की शासकीय भाषा बना देने से ही भारतीय संविधान तन्त्र अपनी दुर्दशा को प्राप्त है। यदि हिन्दी संविधान की भाषा रहती तो यह संस्कृत की छाया से आप्लावित रहती ऐसी स्थिति में देश पश्चिमी 'शूकर-दर्शन' के दलदल मे न फंसता। इसके लिये देखिए 'भारत के लोगों का संविधान और दर्पण' का दर्शन खण्ड, ले० हरिदत्त शर्मा।*

*३. 'बहुस्याम्' को योग: कर्मसु कौशलम् भी कहा गया है तथा 'वृत्ति निरोध' को योगश्चित्त वृत्ति निरोध: अथवा लय भी कहा गया है।*

*४. संस्कृत भाषा की उत्पत्ति, विकास और लय का आधार एवं दर्शन पाणिनि द्वारा वर्णित शिव के डमरू से उत्पन्न चौदह सूत्रों को माना गया है। भाषा का वह दर्शन सम्पूर्ण भौतिक जगत की सृष्टि, विकास और लय का भी दर्शन है क्योंकि शब्द भौतिक वस्तुओं का ही प्रतिनिधित्व करते है। जिसे शब्द और अर्थ एक दूसरे से गुथें हुए हैं, कहा जाता है।*

*५. शब्द का गुण आकाश अर्थात् 'टंकार' 'गूंज' का अनन्त तक पहुंचना ही 'आकाश तत्त्व' है।*

सभी लोक भाषाएँ पैरों के बल पर खड़ी हैं।[1] इसका आशय यह है कि संस्कृत अमूर्त, अध्यात्म अथवा भाव जगत की भाषा है। जबकि लौकिक भाषाएँ धीरे-धीरे विकसित भाषाएँ हैं। दूसरे शब्दों में लौकिक भाषाएँ आवश्यकता, क्रिया निर्माण और विकास क्रम पर आधारित हैं। तथा संस्कृत इस विकास क्रिया के पूर्व जन्म ले चुकी अमूर्त जगत 'अस्ति' की भाषा या शब्द हैं। इसका अर्थ है कि पृथ्वी पर विकास क्रम प्रारंभ किस रूप में हो इसकी रूपरेखा विराट् ब्रह्माण्ड के भाव जगत में पहले बन जाती है। यही 'अस्ति' भौतिक जगत में क्रमशः विकसित होती है, इसी को लोक भाषा कहते हैं जो 'अस्ति' भाषा की तरह परिष्कृत नहीं होती है। यही कारण है कि संस्कृत व्याकरण के ज्ञाता पाणिनी के सूत्रों से ही जब शब्द का सिद्ध हो जाना प्रमाणित करते हैं तो उनकी शैली ऐसी होती है मानो वे आकाश से ही शब्द को ग्रहण कर प्रस्तुत कर रहे हों। यह बात स्वयं में अद्भुत है, क्योंकि शब्द आकाश का गुण है।[2] यही गुण संस्कृत को अद्वितीय बना देता है।[3] इस विवेचन से यह तथ्य हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास की दृष्टि से सर्वप्रथम लोक भाषाओं का जन्म होता है, तभी उनको संस्कारित कर संस्कृत का जन्म होता है, अन्यथा वस्तु के अभाव में उसका संस्कारित स्वरूप बनाना सम्भव नहीं है।[4] यहाँ पर पुनः यह महत्त्वपूर्ण है कि लोक भाषाओं को संस्कारित कर जो संस्कृत भाषा बनी वह 'अस्ति' स्तर की भाषा की ही बराबरी करती है! यह कैसे सम्भव हुआ आज इसे समझना कठिन है। हाँ 'योग' की समाधि भाषा को भी 'अस्ति' की भाषा कहा जाता है।

पं० किशोरीदास वाजपेयी ने बहुत पहले इस बात को कहा था कि संस्कृत से हिन्दी का विकास नहीं वरन् 'आदि हिन्दी' अर्थात् प्राकृत अथवा लोक भाषा से संस्कृत का विकास हुआ है। वाजपेयी जी स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने लिखा है- "हिन्दी की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से नहीं है, जो कि वेदों में, उपनिषदों में तथा बाल्मीकि या कालिदास आदि के काव्य ग्रन्थों में हमें

---

*१. कार्लमार्क्स का मानना था कि हीगेल का द्वन्दवाद सिर के बल खड़ा था, उसने उसे पैरों के बल खड़ा कर दिया। प्राचीन ग्रीक एवं लैटिन भाषाएँ भी शास्त्रीय भाषा की श्रेणी में विकसित हुई परन्तु वे संस्कृत के स्तर को नहीं छू सकी क्योंकि उनके पास भाषा के लिये 'आकाश तत्त्व' के जैसा कोई दर्शन नहीं था।*

*२. एस०लेवी ने इसी बात को इस तरह व्यक्त किया है– 'देववाणी' ने अधिक सामान्य प्रयोग ग्रहण किये किन्तु वह 'ऊंचाई से पृथ्वी को केवल स्पर्श करती हैं।' उद्धृत ज्यूल ब्लाख, भारतीय आर्य भाषा (हि०अनु०) हिन्दी समिति, उ०प्र० शासन, लखनऊ, १९७२, भूमिका पृ० ५।*

*३. हालांकि आधुनिक व्याकरण के ज्ञाता स्वयं नहीं जानते हैं कि ऐसा कैसे होता है।*

*४. यही बात प्राचीन ग्रीक और लैटिन की है। यूरोपीय विद्वान भी इन्हें वर्तमान यूरोपीय लोक भाषाओं की मूल भाषा मानते हैं। यह समझ भी ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा है, तब हम कैसे कह सकते हैं कि पश्चिमी ज्ञान ही परिष्कृत एवं विज्ञान सम्मत है? यह बात अलग है कि ग्रीक और लैटिन उन भाषाओं का थोड़ा सा परिष्कृत रूप हैं जिन्हें आज वहाँ की भिन्न-भिन्न भाषायें कहा जाता है, परन्तु यह संस्कृत की तरह 'अस्ति' के स्तर को न छू सकी।*

उपलब्ध है।.....दोनों का पृथक् और स्वतंत्र पद्धति पर विकास हुआ है, परन्तु हैं दोनों एक ही भाषा की शाखाएँ।.....वेद रचना जिस भाषा में हुई उसे आप साधारणत: 'मूल भाषा' कह सकते हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में और साहित्य की भाषा में कुछ अन्तर आ ही जाता है। साहित्य निर्माण के समय हम भाषा पर अधिक ध्यान देते हैं। जब 'मूल भाषा' में वेद जैसे उत्कृष्ट साहित्य की रचना होने लगी तो उसका रूप संस्कृत हो चला। साधारणजनों की भाषा वही प्राकृत रही। सो मूल भाषा के दो रूप हो गए वेदों की 'संस्कृत भाषा' और लोक व्यवहार की साधारण 'प्राकृत भाषा'।.....अब उस प्राकृत को देखिए, जिसका संस्कार करके ऋषियों ने उस रूप में अपनाया था। मूल भाषा के जनगृहीत रूप को हमने 'प्राकृत' कहा है। साधारण बोलचाल की भाषा में रूप परिवर्तन.....तो सहस्रों वर्षों में दिखाई देता है।'"[1]

जब हम 'अस्ति' की भाषा को संस्कृत के साथ जोड़ देते हैं तो यह कहना कठिन हो जाता है कि कौन पहले– संस्कृत पहले या लोक भाषाएँ पहले। भौतिक जगत में लोक भाषाएँ पहले आयेंगी तथा आध्यात्मिक जगत में संस्कृत। तात्पर्य यह है कि लोक भाषाओं के माध्यम से ही संस्कृत 'अस्ति' के स्तर पर पहुँच सकी है। अत: केवल संस्कृत को ही एक मात्र वैज्ञानिक भाषा कहना उतना ही कठिन है जितना कि लोक भाषाओं को अवैज्ञानिक कहना। यह वैसा ही है जैसे हम कहें कि पंक में खिला फूल विज्ञान सम्मत है और पंक विज्ञान के नियमों के विपरीत है। इस विश्व में भौतिक और अध्यात्म (भाव जगत) दोनों की परस्पर निर्भरता है।

अत: दोनों क्षेत्रों की भाषाएँ अपने-अपने स्तर पर विज्ञान सम्मत हैं। चूंकि विज्ञान का पक्ष क्रिया तक ही सीमित होता है अत: यह भाव जगत द्वारा नियंत्रित होता है। इस भाव जगत का एक उद्देश्य एवं दर्शन होता है जबकि विज्ञान क्रिया के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं होता है उसका अपना कोई उद्देश्य या दर्शन नहीं होता है। इसी भिन्नता के कारण भाव जगत (अध्यात्म, विचार या अस्ति), विज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।

संस्कृत लोक भाषाओं के पूर्व की है या इनका संशोधित संस्करण है, इस बहस में न पड़कर हमें उसके 'अस्ति' पक्ष को देखकर उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करना पड़ता है। इसका यह अर्थ नहीं कि लोक भाषाओं के स्थान पर संस्कृत को लाया जा सकता है। लोक भाषाओं का अपना महत्त्व है, संस्कृत का अपना। समस्त लोक भाषाएँ 'श्रुति' के अन्तर्गत आ जाती है। संस्कृत एक पूर्ण अथवा समग्र भाषा है, जिसे हम आदर्श भाषा कह सकते हैं। संस्कृत ने 'श्रुति' कहकर लोक भाषाओं के महत्त्व को कभी भी कम नहीं होने दिया न भारत की किसी लोक भाषा को समाप्त करने के प्रयास किए। इसके विपरीत संस्कृत ने लोक

---

१. *हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० १-४।*

भाषाओं को बनाए रखा, उनको अपने शब्द और दर्शन देकर संस्कारित किया। इसका परिणाम यह रहा कि भारत की सभी भाषाएँ संस्कृत की छाया में रहने के कारण अंग्रेजी की तरह 'पतित दर्शन' अथवा 'वाराह दर्शन' के दुर्गुणों से व्याप्त न हो सकीं। परन्तु ज्यों-ज्यों भारतीयों ने लोक भाषाओं के नाम पर संस्कृत को 'गाली' देना अपना रोजगार बना लिया तब से भारत का चारित्रिक स्तर लगातार गिरता गया और आज स्थिति यह है कि अंग्रेजी की प्रतिस्पर्धा में भारत की लोक-भाषायें भी शूकर-दर्शन से व्याप्त हो गई हैं। इसी का परिणाम है कि स्वतंत्र भारत के 'लोक नायक' (मंत्री, सांसद, विधायक, प्रशासक/सम्पूर्ण शासन तंत्र मंत्री से संत्री तक) आकंठ भ्रष्टाचार की कीचड़ में लिपटे हुए हैं। जिसके शरीर में डकैती, हत्या, लूट और घोटालों की जितनी मोटी कीचड़ जमी है वह उतना ही बडा नायक बना हुआ है। प्राचीन काल में भी ऐसी स्थिति आई होगी, तभी ऐसे 'दर्शन' वाले कालखण्ड को पुराणों में 'वाराहावतार' का युग कहा गया है। इस युग में मनुष्य शूकर के गुणों और स्वभाव से आविष्ट हो जाता है। यही कारण है कि पौराणिक मूर्तियों या भित्ति चित्रों में मनुष्य के शरीर में शिर (= विचार, भाव, दर्शन का केन्द्र) शूकर का बनाया जाता है। इस तरह की स्थिति के कारण ही संस्कृत एक स्तर तक ही लोक भाषाओं के महत्त्व को स्वीकारती है और मानती है कि मानव समाज 'वाराह युग' के ऊपर की सीढ़ी है, अत: इसके लिए एक ऐसी संस्कारित भाषा होनी चाहिये जो लोक भाषाओं की 'वराह-वृत्ति' को नियंत्रित करने में मार्गदर्शक की भूमिका निभाती रहे। आज विज्ञान से लेकर वैज्ञानिक तक, विद्या से लेकर विद्वान तक, राज्य से लेकर राजनीतिज्ञ तक सभी अति उपभोगवाद के 'वाराह स्वरूप' की पूजा में निमग्न हैं। पुराणों को अन्धविश्वास कहना ये सभी अपना प्रथम कर्तव्य मानते हैं, जबकि इन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं हो पाता है कि वे जो भी क्रियाएँ सभ्यता के नाम पर कर रहे हैं वह सब 'वाराह दर्शन' से व्याप्त है। विश्वभर के वैज्ञानिक और विद्वान यदि 'वाराह अवतार' को समझना चाहते हैं तो उन्हें थोड़ी देर के लिए स्वयं के शरीर पर वाराह का शिर होने की कल्पना करनी होगी, तभी उन्हें अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होगा। अपने यथार्थ स्वरूप को न पहचानने के कारण ही कहा गया है कि 'ज्ञानवान' भी 'देखते हुए नहीं देखता है।'[1] संस्कृत और लोक-भाषाओं में आधारभूत अन्तर यही है कि संस्कृत मनुष्य की चेतना को पशुवृत्ति अथवा अति उपभोगवादी विज्ञानवृत्ति से ऊपर उठाने का कार्य करती है, जबकि लोक भाषाओं में यह गुण सुप्त अवस्था में होता है। वे स्वभावत: उपभोगवाद की भाषाएँ होती है, अत: इनके मार्ग दर्शन के लिए संस्कारित भाषा का होना आवश्यक होता है।

इस विवेचन के साथ आशा की जाती है कि यह कृति एक नवीन पद्धति से 'समस्याओं' के निराकरण का मार्ग प्रशस्त करेगी।

---

१. ऋग्वेद १०/७१/४; निरुक्त १/५/७; १/६/६।

## कुमाउनी : ग्रीक

**ग्रीक:** ग्रीक भाषा प्राचीन यूनान की भाषा थी। इसके कुछ अभिलेख १४०० ईस्वी पूर्व के भी मिले हैं, 'ग्रीक, अंग्रेजी में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। प्राचीन रोमन ग्रीक भाषा के लिए graeci (ग्रैकी/ग्राइकी) शब्द का प्रयोग करते थे। स्वयं ग्रीसवासी इस भाषा को सामान्य रूप में Hellenic (हेलेनिक) कहते थे। इस भाषा की अनेक उप भाषाएँ थीं। एटिक, डोरिक, आयोनिक, ऐओलिक मुख्य भाषा प्रकार थे। इन भाषाओं में सामान्य रूप में मानक एकता मिलती है। इस समानता के बाद भी प्रत्येक भाषा के अनेक शब्दों के वर्णों और उच्चारण में भिन्नता मिलती है। यही बात विश्व की सभी मानक भाषाओं और उनकी बोलियों में आज भी विद्यमान है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मानकीकरण भाषा विकास के अंतिम चरण में होता है। अत: तुलनात्मक भाषाशास्त्र के लिए मानकीकृत भाषा की अपेक्षा बोलियों की भाषा और उनके उच्चारण अधिक सहायक होते हैं। इसी दृष्टिकोण के आधार पर इस पुस्तक में भाषा/शब्द के मानकीकृत उच्चारण के साथ-साथ अन्य उच्चारण भी दिये गए हैं, इससे अन्य भाषाओं के शब्दों को समझने में सरलता हो जाती है। साथ ही शब्द के उच्चारण विशेष से उसकी व्युत्पत्ति भी स्पष्ट हो जाती है। संस्कृत की तरह ग्रीक भाषा भी (प्राचीनकाल से अब तक) एक जीवित भाषा है।

**कुमाउनी :** यह भाषा भारत में मध्य हिमालय क्षेत्र की पहाड़ी भाषा के रूप में जानी जाती है। कुमांऊ क्षेत्र में बोली जाने के कारण इसे 'कुमाउनी' कहा जाता है। इसका लिखित साहित्य बहुत कम है। लिखित रूप में हिन्दी का ही यहाँ प्रयोग होता है। लिपि 'देवनागरी' है। कुमाउनी का प्रयोग वर्तमान उत्तरान्चल राज्य के पिथौरागढ़, बागेश्वर, चम्पावत, अल्मोड़ा, नैनीताल और ऊधमसिंह नगर जिलों में होता है। नेपाली और गढ़वाली भाषाओं से कुमाउनी की अति निकटता है। कुमाउनी का लिखित साहित्य प्रचुर मात्रा में न होने पर भी यह एक समृद्ध भाषा है। इसमें संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा भारत की अन्य सभी भाषाओं के शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कुमाउनी को प्राचीन संस्कृत, प्राकृत, पालि या अन्य भारतीय भाषाओं से विकसित मानना इसलिए अधूरा है क्योंकि इसमें ग्रीक, रोमन, प्राचीन एवं नवीन अंग्रेजी, फ्रैंच, जर्मन, डच, पुर्तगीज, स्पेनी, प्राचीन नार्स सहित विश्व की अन्य सभी भाषाओं के शब्द मिलते हैं। यह बात इस पुस्तक में देखी जा सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि कुमाउनी उस आदिकालीन भाषा का मूल सत्त्व है जहाँ से विश्व की सभी भाषाओं का प्रारंभिक विकास हुआ था। इस भाषा के लिये तीन शब्दों, कुमाँउनी, कुमाउँनी और कुमाउनी का प्रयोग प्रांय: मिलता है। यहाँ पर तीसरे शब्द 'कुमाउनी' को मानक के रूप में लिया गया है।

**कु०** अगा, अग्घा/अगृघीनु/अगृवा = आगे/आगे बढ़ना/नेतृत्व करना या नेता।

हि० आगे, अगुवा, सं० अग्र।

ग्री० αγω (ago) - अगो/अग् ओ/अग् वो = आगे बढ़ना, नेतृत्व करना।

व्या० अग् + ओ = अग्नि का आना, होना (हो), बहना। अग्नि के आने या उत्पन्न होने से ही सबसे पहले हलचल उत्पन्न होती है, या उसमें चेतना आती है। चूंकि यह क्रिया अग् = अग्नि से उत्पन्न होती है अत: 'अग्' की क्रिया से आगे, नेतृत्व करना, आगे बढ़ना, आदि अर्थ व्युत्पन्न होते हैं। पुराणों में अग्नि की इसी विशेषता के कारण उसे अग्र, अग्रदूत, नेता आदि कहा गया है।

कु० पल्यूनु/पलीनु/पलाउतोछ = सिंचाई करना, गीला करना/कोंपल निकलना, उगना/पाल में पका हुआ। हि०, भो०पु० पलाना, पाल डाला हुआ।

ग्री० πλουτος (ploutos/ploitos)- प्लाउतोस/पलाउतो स (छ)/ पलीतोस (छ)/पलोइतो स (छ) = धन, सम्पत्ति।

व्या० खेत 'पलाने' से उसमें उत्पादन क्षमता आ जाती है। फल आदि को 'पाल' में रखने से उनमें परिपक्वता एवं मिठास आ जाती है अथवा गुणों की वृद्धि हो जाती है। कोंपलों की वृद्धि इसी 'पाल्' या पली/प्ली में धनात्मक आवेश की क्रिया का परिणाम है। संस्कृत में इसे 'प्लावन' कहा गया है, मूल रूप में यह जल एवं मिट्टी का मिश्रण है, जिसे क्रियाशील बनाने के लिए मथा जाता है (खेत पलाना)। इसमें धनात्मक भाव उत्पन्न होने पर ही यह आगे के विकास का आधार होता है। फल आदि को पाल डालने की प्रक्रिया में उनका अधूरा विकास पूर्ण होता है। इन पलायी हुई या पाल में पकी हुई वस्तुओं (जिनमें धनात्मक गुण या आवेश आ जाता है) को धन या संपत्ति कहा गया है, क्योंकि ये आगे के विकास को भी बढ़ाती (धन = जोड़, वृद्धि) करती हैं। परम्परागत रूप में 'पलाना' या 'पलाउतोस' आदि का मूल शब्द कु० 'पल्यो' (कढ़ी) है जिसमें धनात्मक गुण होते हैं और गोरस भी 'धन' ही कहा जाता है।

कु० खोप, खोप्नु = छेदन करना, चुभाना, अलग करना, काटना।

ग्री० κοπη (kope)- कोपे/कोपी/खोपे/खोपई = काटना, अलग करना।

व्या० पुराणों में रेचक वायु का नाम 'का' या 'कवा' है, इसकी गति से शरीर के रस कोषिका की दीवाल को छेदते हुए अथवा कांटते हुए दूसरी ओर जाते हैं। अत: 'कओ+पए' (रेचक वायु की क्रिया) से कोपे या खोपे शब्द बन जाता है जिसका अर्थ छेदन या काटना होता है। 'पए' का अर्थ बटना या निचोड़ना है।

कु० पटेरो, फटेरो = पटरा, तख्ता।

ग्री० φτερο (phtero)- फतेरो/फटेरो = पंख।

व्या० पटरा (पटेरो) और फटरा (फटेरो) एक ही वस्तु पटरा या तख्ता है। क्रिया के आधार पर इनके दो रूप बन जाते है। वस्तु रखने पर इसे पटरा/पटेरा/पटेरो

कहा जाता है। जब इसी पटरे से जल या वायु को फाड़ कर या उलीच कर रास्ता बनाया जाता है तो उसे फटेरा/फटेरो कहा जाता है। वायु चीरने या उलीचने की इसी क्रिया के आधार पर ग्रीक में फतेरो (उलीचने वाला) या फटेरो (फाड़ने वाला) का रूढ़ अर्थ पंख बनाया गया है। पंखों द्वारा वायु या आकाश को चीरते/फाड़ते हुए जाने के सम्बन्ध में गरुड़ की अनेक कथाएँ मिलती हैं।

**कु०** दवोरो/दबोरो = दवाँई किया हुआ, कूट-पीस कर बनाया हुआ।
**ग्री०** δωρο (doro)- दवोरो/दओरो/दवरो = पुरुस्कार।
**व्या०** दवोरने या दवाँई करने से जो शेष बचता है वह पुरुस्कार ही है, अथवा इस कार्य के बदले जो मिले वह भी पुरुस्कार है (दवोर् + ओ > दवोर् + हो)।

**कु०** खुम्/खुमा/खामो = अंकुर/पैरो में चुभने वाले ढोके या तिनके या टीला/खम्भा।
**ग्री०** χωμα (khoma)- खोमा/खुम/खोम् = तालाब, टीला (प्रा० ग्री०); मिट्टी, कीच (आ०ग्री०)।
**व्या०** गन्ना काटने के बाद जो नीचे का भाग बचता है, वे छोटे-छोटे टीले (शीर्ष) भी हैं और अंकुर भी क्योंकि उन्हीं से नया पौधा उगता है। 'खोम' अनावश्यक द्रव्य है जैसे गन्ने की खोई। तालाब के अर्थ में कीच युक्त मिट्टी है। जिसमें अनेक जीवों, वनस्पतियों का अंकुरण होता है। खम्भा इस अर्थ में है कि यही कीच, टीले या तालाब शरीर के आधार या स्तम्भ होते हैं। शरीर में लार, शिष्ट (अवशिष्ट = खुभ या खोम) और श्लेष्म ही तालाब, टीले, कीच, खम्भा आदि की क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं। पौराणिक आख्यानों में इसे पार्वती के स्नान से उत्पन्न कीच, या कीच का टीला कहा गया है, जिसमें सभी बीज (अंकुर) होते हैं। जिन्हें गणेश (मूल आधार) कहा गया है।

**कु०** अल्लो = कांटेयुक्त पौधा, दूसरा, दूसरे का (अल्लो छ), दूसरी ओर (अल्लि तर्प)।
**ग्री०** αλλος (allos) - अलोस/अल्लोस (छ)/अल् लओस (छ) = दूसरा, दूसरी ओर।
**व्या०** अल्ल/अल्लो एक घास विशेष का नाम है, जो अनेक औषधियों में काम आती है। यह पौष्टिक, उत्प्रेरक एवं दुग्धवर्धक होती है। 'अल्' धातु इसी रसायन के गुणों के आधार पर व्युत्पन्न है। इस पौधे की पत्तियों एवं तनों में तीखे कांटे होते हैं। पौधे का रस लिबलिबा होने से रेचक भी होता है, जो गति उत्पन्न करता है। अत: शरीर के वे रसायन 'अल्/अल्ल कहे जाते है जो अन्य द्रव्यों का छेदन, भेदन एवं गमन करते हैं। ये रस (हार्मोन) सामान्य से विशेष होते है या दूसरे स्थान से आते हैं अथवा लाये जाते हैं। इसी प्रक्रिया के आधार पर अल्लो का अर्थ दूसरा,

दूसरी ओर (जहाँ अल्ल + ओंस = अल्ल फलता है, उगता है) अर्थ लिया गया है। अल्ल के घने पौधों के बीच कोई फंस जाता है तो कांटो की तीव्र चुभन एवं जलन से जोर से चिल्लाता है, इसी आधार (क्रिया) से जोर से चिल्लाने के लिये भोजपुरी में 'अललात' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

**कु०** लेइ पओ/ली पओ = लेकर ग्रहण किया/लिया और गया।
**ग्री०** λειπω (leipo)- लीपो/लेइपो/लेइपओ = मैं जाता हूँ, छोड़कर चले जाना।
**व्या०** शरीर में लेई फिसलन युक्त रसायनों का नाम है जिनको स्पर्श या ग्रहण करते ही अन्य द्रव्य फिसलकर गन्तव्य को चले जाते हैं अथवा उस लेई को लेते ही (ली) रासायनिक क्रिया (पओ) करने लगते हैं और इसी से गतिशील (जाते) होते हैं। लोक में भी भोजन कक्ष में 'पाया ओर गया' को स्पष्ट देखा जा सकता है। मुंह में लार (लेई) लेने पर ही पओ (पयाने और जाने) की क्रिया सम्पन्न होती है। अत: ग्रीक में ली पओ या लेइपओ का अर्थ 'मैं जाता हूँ' लगाया गया है।

**कु०** केलोधुस = केले का आटा या रस।
**ग्री०** κελευθος (keleuthos)- केलेउथोस/केलेउतूष/केलेउथूस > केलउधुस = रास्ता, मार्ग।
**व्या०** शरीर नगर के पथ फिसलन युक्त द्रव्य से बने होते हैं। केले के रस में ये गुण होते हैं, अत: उसी के अनुरूप द्रव्य वाहिनी नलिकाओं की दीवालें फिसलन युक्त द्रव्य से बनी होने के कारण मार्ग का नाम केलेउ (केले का) तूष या धुस (रस या धूलि) रखा गया है। दूसरे शब्दों में जहाँ भी केले की तरह फिसलन हो वही मार्ग है।

**कु०** दिऐ रए छइस (छ)/दिआइ रए छइछ = दते रहने की क्रिया, देना, बाँटना।
**ग्री०** διαιρεσις (diairesis)- दिऐरेसिस्/दइ अै रए छइस (छ) = अलगाव, विभाजन, बांटना।
**व्या०** देना स्वयं में बांटना या अलगाव करना है। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति भी है— दइ आइ रए सिज्। कु० में दइ = दही का नाम है। दही में जब सीझने (कु० सिज्, सिजनु) की क्रिया होती है तो उसमें भी विभाजन और अलगाव होने लगता हैं थक्का और पानी अलग-अलग हो जाते हैं।

**कु०** पाइ/पाईनु/पाइस् (छ) = गेहूँ, चावल में पड़ने वाली घुन/पाई (बटने) से निर्मित द्रव्य, निर्मित/पयाया हुआ, परिपक्व वस्तु, द्रव्य, जीव।
**ग्री०** παις (pais) - पाइस्/पैस/पिस = पुत्र या पुत्री, बालक, बालिका।
**व्या०** दूध को जो सूक्ष्म जीवाणु पयाते हैं, वे पाइ कहलाते हैं। इनके निर्माण से जो दही बनता है, वह दुग्ध के पुत्र-पुत्री कहे जाते हैं। कपड़े में रखे द्रव को पयाया (निचोड़ा) जाय तो छनकर बूंदे निकलती हैं ये बूंदे भी पूर्व द्रव्य के पुत्र या पुत्री

कहे जाते हैं। शरीर में भोजन सहित भोजन तंत्र के क्रिया कलाप माता-पिता तथा उनकी क्रिया से उत्पन्न (पाई करने से) बूंदे जो रक्त में जाती हैं, पुत्र या पुत्री कहे जाते हैं। इसका पौराणिक उच्चारण 'पैज', 'पैज (वन)' है।

कु० ओड़ो (स/छ)/होरो (स/छ) = सीमा का पत्थर, सीमा की मेंड़/मेड़, आलू लगाने का होरा (मेड़) (स/छ = है)।
ग्री० ορος (oros/horos)- ओरोस (छ)/होरोस (छ)= सीमा, दीवाल, अवरोध।
व्या० कुमाऊ में 'ओड़ो' और 'होरो' से सभी परिचित हैं। ग्रीक ओरोस का एक अर्थ पर्वत भी होता है, मेंड या दीवाल का विस्तार ही पर्वत है। इसका उच्चारण 'होरोस' अथवा 'ओरोस' किया जाता है। कुमाउनी में 'होरो' और/ओड़ो दोनों उच्चारण हैं।

कु० हेलाऔंस/हेलो औंस = कीच, पंक का औंसना, सूखना, गंध देना, कीचड़ से भाप युक्त ऊष्म वातावरण का बनना।
ग्री० ηελιος (helios) - हेलिओस = सूर्य।
व्या० सूर्य स्वयं पृथ्वी पर नहीं आता है, उसकी किरणें (ऊष्म तत्त्व) ही पृथ्वी पर आती हैं। उस ऊष्मा से जलप्लावित पृथ्वी को सूर्य की किरणें सुखाते हुए भाप युक्त गर्म वातावरण में परिवर्तित कर देती है। कुमाउनी में इस क्रिया को औंस/औंसना कहा जाता है। कुमाउनी में 'हे' भैंस का सम्बोधन है। 'हे' का पौराणिक एवं आयुर्वेदिक गुण ऊष्ण कहा गया है। अत: क्रिया के आधार पर जो औंसने की प्रक्रिया द्वारा ऊष्मा (हे) का निर्माण करता है वही हे लिओस (छ) (ऊष्मा को लाने वाला) है। कुमाउनी में लिओस, लिओछ, लिओंछ (=लाता है) तीनों उच्चारण मिलते हैं। यह व्याख्या निरुक्त के इस सिद्धान्त के अनुरूप है कि सभी नाम क्रिया पर आधारित होते हैं। शरीर ब्रह्माण्ड में सूर्य जैसा कोई गोल ग्रह नहीं होता है, वहाँ प्राणवायु के सम्पर्क से जल तत्त्व ऊष्मित होकर वाष्प बनता है, उसी की चमक और ऊष्मा को 'सूर्य' कहा जाता है। इसी आधार पर 'सूर्य नाड़ी' शरीर में सूर्य पथ कही जाती है (पुराण एवं योग ग्रन्थों में)।

कु० मओरिआ/मोड़िया/मोयन = कोमल करने वाला/मोड़ने वाला/आटे में दिया जाने वाला मोयन (घी, दही, दूध)।
ग्री० μορια (moria)- मोरिआ/मओरिआ/मोड़िआ (या)= जैतून का पवित्र वृक्ष।
व्या० मवाना, मओरना, मोयन देना, मोड़ना (लचीला बनाना) एक ही क्रिया के भिन्न-भिन्न नाम हैं। यह आटे में घी या अन्य स्नेह द्रव्यों को मिश्रित करने की क्रिया है। इससे द्रव्य कोमल, लचीला और वाही (न चिपकने वाला, सरलता से बहने वाला) हो जाता है। ग्रीक में जैतून का तेल (स्नेह) प्रयोग में आता है, जिसमें उपरोक्त सभी गुण होते हैं अत: जैतून वृक्ष के अर्थ में मोरिया/मओरिया शब्द रूढ़

कर दिया गया है।

**कु०** अ भाप दिओ तो छ/अभाप्तिओ छ/अबाप्तिओ छ = जिसे भाप में संस्कारित न किया गया हो, जो अशुद्ध या असंस्कारित है।
**ग्री०** αβαπτιοτος- (avaptiotos)- अवाप्तिओतोस्/अभाप्तिओ तूष/अभापदिओ तो स (छ) = वपतिस्मा बिना, संस्कार रहित, असंस्कारित।
**व्या०** शरीर में जब तक ऊष्मा (भाप) से द्रव्यों का परिपाक नहीं हो जाता है वह असंस्कारित या अग्राह्य होते हैं। इसी के अनुरूप व्यक्तियों का भी संस्कार या वपतिस्मा किया जाता है। व्यक्तियों का संस्कार शिक्षा, कला, नैतिकता आदि के अभ्यास द्वारा किया जाता है। धार्मिक संस्कार वैज्ञानिक नियमों का केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं।

**कु०** अभारिस (छ) = जो अभारी या हल्का है। भारी के विपरीत अ-भारी।
**ग्री०** αβαρης (avaris)-अ वारिस > अभारिछ/अभारी छ = हल्का, भारी नहीं।
**व्या०** इसकी व्याख्या उच्चारण के प्रकारों के अनुरूप है। शरीर में 'वारिस' (जल वर्षण या गीले अन्न) से भार बढ़ता है। जब अ (= नहीं) + वारिस (=जल) की स्थिति या सूखा होता है तो हल्कापन होता है। इसी शाश्वत सत्य के आधार पर 'अवारिस' का अर्थ हल्का होता है।

**कु०** अ बाटो = अ (नहीं) + बाटो (रास्ता, मार्ग) = मार्ग रहित, मार्ग विहीन।
**ग्री०** αβατος (avatos)- अवातोस/अबाटो छ = मार्ग रहित, जाने के अयोग्य।
**व्या०** मार्ग निर्मित (बटा हुआ, बातो = दिए की बत्ती भी मार्ग है) होता है। पथरीला या अवरोध युक्त स्थल को मार्ग नहीं कहा जाता है। अथवा 'अ वातो' (= बिना हवा के) अर्थात् ठोस अवरोध होने की स्थिति में भी मार्ग नहीं होता है।

**कु०** अ बले पसिआ = बिना ऊष्मा (बल) के पका हुआ।
अवलेप्सिया/अभ्लेप्सिआ = अवलेप का गुठली युक्त बन जाना/आग् में गीला पन आ जाना।
**ग्री०** αβλεψια (avlepsia) - अ बले पसिआ/अव्लेप्सिआ/अभ् लेप्सिआ = असावधानी, चूक।
**व्या०** लपसी बनाने की क्रिया में असावधानी के कारण सही आंच न लगने, ठीक से न चलाने से अनेक दोष आ जाते हैं, यह अर्थ इसी प्रक्रिया से ग्रहण किया गया है।

**कु०** अभरेक् तो छ/अ बरेख् तो छ (स) = बिना भरा हुआ है/बिना वर्षा का है, शुष्क या खाली है।
**ग्री०** αβρεκτος (avrektos) - अव्रेक्तोस/अ भरेक् तो स (छ)/अ बरेख्तोस/अ बढ़ेक्तोस = सूखा, जो गीला नहीं है। अत: वह 'अ बढ़ेक्तो' (स्थिर या आगे

न बढ़ने, न सरकने वाला) भी है। शरीर में शुष्क द्रव्य ही इस गुण से युक्त होता है।

कु० अगिओछ (स)/आगिओ छ = आग से शुद्ध किया हुआ, आग से औंसा हुआ, अग्नि युक्त/तपाया हुआ, शुद्ध।
ग्री० αγιος (agios) - अगिओस्/आगिओछ = पवित्र।

कु० अग् ला औंस/आग् लऽ औंस = अग्नि का भाप (उमस) बनाना या लाना।
ग्री० αγλαος (aglaos) - अग्लाओस = कांति, चमक, तेज।
व्या० शरीर के भीतर द्रव में निहित ऊष्मा जब भाप में बदलती है तो उसी से चमक, कांति उत्पन्न होती है। ग्रीक में इसे अग्नि का लवा (लावा, स्फुलिंग, चमक) कहा गया है।

कु० अग् (आग्) कुरा/आग् कुराइ = अग्नि में 'कुर' के गुण उत्पन्न होना।
ग्री० αγκυρα,η (agkura-i)- अग् कुरा, इ/अग् कुरआ,इ/अग्कुरै=लंगर, एंकोर।
व्या० शरीर में अग्नि द्रव/द्रव्य मे ही संपृक्त होती है, वहाँ भौतिक अग्नि की तरह शुष्क अग्नि नहीं होती है। 'कुर' या 'कुरा' भेड़ों के बालों में चिपकने वाले कांटेदार गोल बीज का नाम है। जब शरीर का द्रव गाढ़ा होकर स्थिर होने लगता है और उसमें चिपकन उत्पन्न हो जाती है तो उसी गुण का नाम 'लंगर' या एंकोर (अं०) है।

कु० अग् वोराइ = अग्नि का संपृक्त हो जाना या तीव्रता कम हो जाना अथवा अग्नि से सम्पृक्त भोज्य को अन्यत्र भेजना, देना।
ग्री० αγορα,η (agora,i) अगोरा, इ/अग् वोराइ = बाजार।
व्या० शरीर के भोजनालय में जब अग्नि अन्न से संपृक्त हो जाती है तो उसकी तीव्रता शांत हो जाती है। 'अग् ओरा (वोरा)' या 'अग् ओराइ' का अर्थ होता है अन्न (वस्तु) तैयार है, इसे 'वोराना' (केन्द्र से या शीर्ष से नीचे को देना) है। इस 'वोराने' के स्थल का नाम 'अगोरा' या 'अगोराइ' (= बाजार) है। 'अगोरा' इसलिए भी कि इस स्थान पर ग्राहक को 'अगोरा' (कु०/हि० = प्रतीक्षा) जाता है।

कु० अदरतोस/अदर्तोछ = बिना दला हुआ, बिना कूटा हुआ।
ग्री० αδαρτος (adartos)- अदर्तोस्/अदरतो छ = बिना कूटा हुआ, असंस्कारित।
व्या० जिस प्रकार कूट-पीट, पीस या दल कर अन्न का संस्कार किया जाता है, उसी प्रकार शरीर में भी अन्न का संस्कार होता है। इस क्रिया के अनुरूप 'अदर्तोस्' का अर्थ असंस्कारित, प्राकृत या मूल रूप में अथवा अग्राह्य अर्थ ग्रहण किया जाता है।

कु० अ दिया बास तो स/अदिया बासतो छ = न दिया हुआ जिससे बास (गंध) आ रही हो अथवा जिसका उपयोग न होने से उसमें गंध आ गई हो और

प्रयोग करने लायक न रह गया हो।

ग्री० αδιαβαστος (adiavastos)- अदीयावास्तोस/अ दीया वासतो छ = अपठनीय, जिसे पढ़ा न गया हो।

व्या० शरीर लोक में किसी वस्तु का प्रयोग, उसे हिलाना, डुलाना, साज-संवार करना ही पढ़ना कहा जाता है। ऐसा न करने पर उसमें दुर्गन्ध उत्पन्न होने से वह उपयोग (पढ़ने) के अयोग्य हो जाता है, जैसे नदी का बहता जल पठनीय तथा बंद तालाब का जल अपठीय (अग्राह्य) होता है।

कु० अदिया वातो स = जिसमें से वात (= वायु) भी प्रवेश न कर सके। अदीया बाटो छ = जो रास्ता नहीं देता है।

ग्री० αδιαβατος (adiavatos) - अदीआ वातो स (छ)/अदीया बाटो छ = दुर्गम, अलंघ्य, अप्रवेश्य, जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता हो अथवा जो मार्ग नहीं देता है।

व्या० 'अदीया वातो' या 'अदीया बाटो' तो स्पष्ट है, इसकी एक अन्य व्युत्पत्ति भी है— अड़ीआ वातोस/अड़ीआ (या) बाटोछ = जो वायु के मार्ग में अड़ जाय या उसको अवरुद्ध कर दे अथवा जो मार्ग (बाटो) में अड़ जाय या उसे रोक दे। महाभारत में हनुमान ने भीम के मार्ग में 'अड़' कर उक्त दोनों व्युत्पत्तियों के अनुरूप कार्य किया था।

कु० अदिया बर्खो छ = जो बरखा (वर्षा, जल) को आने से रोकता है, या जल को रोक देता है, जलावरोधी (वाटर प्रूफ)।

ग्री० αδιαβροχος (adiavrokhos/adiavrohos)- अदीया वरोखोस्/अदीया भरोहोस्/अदीया बरोखो छ/अदीया भरो हओछ = जलावरोधी, जल को अवरुद्ध करने वाला।

व्या० 'अदीया बरोखओ स (छ)' = जो बरसे हुए को देने से रोक देता है। यह व्याख्या कठिन नहीं है। 'अदीया वरोहोस' यह व्युत्पत्ति कुछ वक्र है। कु० वर = वोरना, उतरना या बहना है। इसे होने न देना या रोक देने की क्रिया सम्पन्न करना ही 'अदीया वरोहओ स्' है। ग्री० χ के ह और ख दोनों उच्चारण मिलते हैं। 'अदीया' का उच्चारण 'अदिअ' या 'अदिय' भी किया जा सकता है। 'अदिय' 'अड़िय' (अड़कर रोकना) में भी परिवर्तित किया जा सकता है अथवा भरा होने पर भी जिससे रिसाव न हो।

कु० अ दरो छ/अ दलो छ/अदर्नीछ = बिना दला हुआ है, जो न घुले।

ग्री० αδρανης (adranis)- अदरानीस/अ दरानी स् (छ) = निष्क्रिय।

व्या० वही द्रव्य नहीं घुलता है या निष्क्रिय होता है जो पूर्णतः दरा/दला (महीन) नहीं होता है अथवा जिसमें दरने की क्षमता न हो।

कु० अठरोइस/अँठरोइस (छ) = आँठी बनना/बनाना, एकत्र करना, संग्रह करना।
ग्री० αθροισις (athroisis) - अथ्रोइसिस/अठरोइ सिज (सिझ) = एकत्रीकरण, पिण्ड या झुण्ड में एकत्र होना, एक साथ मिलना, संग्रह होना।
व्या० शरीर में आठवें चक्र में द्रव्यों का एकत्रीकरण या समूहीकरण होता है। कुमाउनी में अठ्यूनु या अँठ्यूनु का अर्थ अन्टी में बांधना या आँठी (बन्डल) बनाना है। ग्री० थ और भारतीय ठ परस्पर परिवर्तनीय हो जाते हैं। ग्रीक 'अथ्रो/अठ्रो' 'आँठी' बनने की प्रक्रिया का द्योतक है तथा सिस या सइस कुमाउनी 'सिज'/'सिझ' है। हि० में यह 'सीझना' है। चावल पकने पर 'सीझने' के लिये चूल्हे से उतारकर रख दिया जाता है। इसी 'सीझने' से चावल परस्पर बंधकर पिण्ड या एक समूह में एकत्र हो जाते हैं। इसी क्रिया से अथ्रोइसिस या अठरोइसिज या अठरोइस् का अर्थ व्युत्पन्न है अथवा थ के प्राचीन ग्रीक उच्चारण तह (tʰ) के अनुरूप अ तहरो + सिझ (तह या पर्त रहित पतले द्रव को सिझा कर एकत्र करने की क्रिया) भी पिण्डीकरण है।

कु० आँक रौन/आँक रओन = तीव्र अग्नि का रहना, होना। अग्नि की सर्वोच्च क्षमता (आँक/आँच) का आना।
ग्री० ακρον (akron) - अक्रोन/आक्रोन/आँक रओन/आक्रोन = तीव्रता की सर्वोच्च स्थिति, शीर्ष, अंतिम अवस्था, सर्वोच्च बिन्दु।
व्या० 'आक' या आँक का अर्थ ताप है। अग्नि जब अपनी पूर्ण अवस्था में आकर ताप प्रसारित करती है तो इसी का नाम आक या आँक है। यही सर्वोच्च स्थित या अंतिम बिन्दु है। यह अवस्था यदि रसायनों (जैसे आक् वृक्ष का रस) से उत्पन्न होती है तो उसे 'आक' या आक की आँक (आक् से उत्पन्न तपन, जलन) कहा जाता है। प्राय: यह देखा जाता है कि लोकप्रचलित शब्द से भिन्नता लाने की दृष्टि से लिखित शब्दों में लोक का नासिक्य चिन्ह हटा दिया जाता है। ग्रीक में इसी कला का प्रयोग किया गया है।

कु० आँक रओ/आँक रओ छ = आँक/आँच का होना, बनना, रहना।
ग्री० ακρος (akros) - आक्रोस/आँक रओस (छ) = सर्वोच्च बिन्दु।
व्या० ग्रीक 'आक्रोन' की तरह। संस्कृत में इसे 'आक्रोश' कहा गया है, इसका अर्थ है क्रोध या ताप का सर्वोच्च बिन्दु, जहाँ पर सभी द्रव्य क्रोध पूर्ण व्यवहार (खौलने से) करने लगते हैं।

कु० अल्गो/अल्ग्ओ/अल्जओ (अल्जो)/अल्झओ = अलग करना/अल् (रसायन) में प्रतिक्रिया होना/उलझाना या गांठ बनाना/अल् (रसायन) से चुभन होना।
ग्री० αλγω (algo) = दर्द होना, पीड़ादायी।

व्या० अल् कांटेयुक्त 'अल्ल' नामक घास के गुणों का नाम है। इसके रसों की क्रिया से छेदन (अलगाना), उलझाना (परस्पर रासायनिक समीकरण) होते हैं तो 'टीस' (दर्द) होता है। ग का परिवर्तन ज/झ में भी होता है। यह 'झ' झष् (चुभन) उत्पन्न करता है जैसे कु० झेकड़ो (कांटो का समूह), झालि (लाल मिर्च का प्रभाव)। 'अल्' की इन्हीं क्रियाओं से अल्गो/अल्जो का अर्थ दर्द होता है।

कु० अम्नौस/अम्नोछ = खमीर उठना, अम् (खट्टा) खमीर की गंध।
ग्री० αμνος (amnos) - अम्नोस् = भेड़ा।
व्या० चावल या आटे में अम् (खटास) के साथ-साथ ऊष्मा भी उत्पन्न होती है। इसी से खमीर उठता है। यह स्थिति ऊष्मा (अग्नि) के उत्पन्न होने की है। इस काल में 'मांड' अग्नि को अवशोषित कर भेड़े के बालों की तरह (धनात्मक आवेश युक्त) हो जाता है। इसीलिए इसे भेड़ा कहा गया है। पुराणों और अन्य ग्रन्थों में इसी आधार पर भेड़े या बकरे (अज) को अग्नि का वाहन या प्रतीक कहा जाता है।

कु० अम्लौन/अमइ लान = खटास लाने वाला (माँड़, आटा, स्टार्च)।
ग्री० αμιλον (amilon)- अमिलोन्/अमइलौन = स्टार्च, माँड़।

कु० अन्ठूमिआ/अणा धूमिआ = अन्न (भोजन) को ठूम-ठूम (धीरे-धीरे चबाकर स्वाद लेते हुए) खाना/अण्डे को धुआं देना या सेना।
ग्री० ανατομια/ανατομι (anatomia/anatomi)- अनाटोमिआ/अनाटोमी/अणा धूमिआ/अनाधूमी = अलगाव करना, विच्छेदन करना, चीर फाड़ करना।
व्या० अन्न की चीरफाड़ जैसे मुंह में होती है, अग्नि में जैसे दाल की चीरफाड़ होती है; वैसे ही अन्न की चीरफाड़ शरीर में रसायनों द्वारा उत्पन्न अग्नि से होती है और उनका परीक्षण निरीक्षण स्वाद या गुण के आधार पर होता रहता है अथवा धूम (अग्नि, लेसर किरण) द्वारा अण्डे से अंग प्रत्यंगों की कांट-छांट कर उसे एक जीव में परिवर्तित कर दिया जाता हैं।

कु० अन् दरा पो दओन्तो = अन्न दरने वाला पोने (पकाने) वाला और देने वाला (दिउन्त्या, दिन्त्या), सेवक, श्रमिक, रसोइया।
ग्री० ανδραποδον,το (andrapodon,to)- अन्दरापोदोन्तो/अन्द्रा पो दओन्तो = दास, सेवक।
व्या० ग्रीक 'अन्द्रापोदोन्तो' कुंमाउनी के चार शब्दों को एक साथ जोड़कर बना है।

कु० अपाठेय्या/अपाठी/अपाथी/अपाथेय्या = अपाठी, पाठ न करने वाला; न पाथने वाला (निष्क्रिय, उदासीन)।
ग्री० απαθεια (apatheia) - उदासीनता, अरुचि, अनिच्छा।

व्या० सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा दूध भक्षण के साथ ध्वनि (पाठ, पढ़ना) भी निकलती है। इसी से दही बनती है। इसी दुग्ध भक्षण का नाम पठन, अध्ययन या पाठ है। जो जीवाणुओं की क्रिया भी कही जाती है, जिसे पाथना या निर्माण भी कहा जाता है। जब जीवाणु तृप्त हो जाते हैं तो वे भक्षण कार्य के प्रति उदासीन हो जाते हैं अत: ध्वनि (पठन) भी रुक जाती है। जैसे मनुष्य को खाने या कार्य के प्रति अरुचि हो जाती है। अंग्रेजी में इसे 'ऐपॅथी' या 'ऐपैथी' कहा जाता है।

कु० अ पएरगइया/अपएर जिया = गाय नहीं पयाई (दूध निकालना) हुई/जिया (जी, मन) पयाने का कार्य नहीं करना चाहता है।
ग्री० απεργια (apergia) - अपेर्गिया/अपएरगइया/अपएर जिआ (जइया) = हड़ताल।
व्या० कार्य न करना या बिना कार्य किये लौट जाना हड़ताल ही है।

कु० अ सालितोस/असालेउतो छ = बिना फेंटा हुआ/अमिश्रित।
ग्री० ασαλευτος (asaleutos) - असालितोस्/असालेउतो छ = स्थिर, बिना हिला डुला, दृढ़, कड़ा।
व्या० 'सालना' मिश्रण करना, फेंटना, गूंथना आदि क्रियाओं का नाम है, जैसे रायता सालना। यदि ककड़ी, दही, राई, बिना 'साले' (काटे,पीसे) डाल की जाएं तथा उसे फेंटा (हिलाया) न जाय तो रासायनिक परिपाक न होने से स्वाद नहीं आता है। इसे बनाने की प्रक्रिया का नाम सालना या फेंटना है। गेहूँ से रोटी बनाने की क्रिया भी 'सालना' है।

कु० अ पसीतोस/अपसीतो छ = बिना पका, कच्चा, बिना सीझा भोजन (जैसे-चावल)।
ग्री० αψητος (apsitos)- अप्सितोस्/अपसितोस्/अपसीतो छ = कच्चा, अधपका, बिना भूना हुआ।
व्या० खेत में जब धान की बाली परिपक्व होने लगती है तो उसे 'पसीनु' (कु०) कहते हैं। चावल पकने पर उसे पसीजने या पसीझने के लिए रख दिया जाता है तभी वह स्वादिष्ट होता है अथवा अच्छी तरह भूनकर सब्जी बनती है यह भी 'पसि' का रूप है।

कु० गाछ तरा/गास तरा = गाछ (वृक्ष, पौधा, फूल-पत्ती) को तराने या रखने का साधन, टोकरी/गास (ग्रास) को ले जाने वाला (कोई भी बर्तन)।
ग्री० γαστρα (gastra) - गास्ट्रा/गास तरा/गाछ तरा = फूलदान।
व्या० गाछ से ही फूल, फल अथवा ग्रास (कु० गास) बनते हैं। शरीर में 'ग्रास' को तराने या ले जाने वाले बर्तन, कटोरी या टोकरी 'लार' से बनते हैं। इनमें खाना रखें या फूल, प्रयोग के आधार पर नाम में भिन्नता आ जाती है। स और छ एक

दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं।

**कु०** पटै/पटैओ, पटाइओ (यो), पताइओ = थकान/थका हुआ।

**ग्री०** πταιω (ptaio) - प्तैओ/पटैओ/पटाइओ/पताइओ = धक्का लगना, गलती होना, गिर पड़ना, असफल होना।

**व्या०** जब ऊर्जा का 'पतन' हो जाता है, तो व्यक्ति से कोई कार्य नहीं होता है, वह अनेक गलती करता है, दूसरे से टकरा जाता है, उठने में असमर्थ हो जाता है, स्वयं उसका भी पतन हो जाता है और वह अपने स्थान पर पट (लेटना या चिपकना) हो जाता है। यह पतै या पटै की स्थिति है। इसी का नाम थकान, या सामर्थहीनता है। अथवा जब द्रव्य की ऊर्जा 'पत्' या 'पट' {अन्यत्र अवशोषित होना या पट (फैल) जाना} जाती है तो द्रव्य गाढ़ा होकर शिथिल होकर पताइ या पटाइ (सूखे पत्तों की तरह बिछ जाना, स्थान में पट जाना या चिपक जाना) जैसा हो जाता है। इस स्थिति का नाम भी पतै या पटै अर्थात् ऊर्जाहीनता या थकान है। इन दोनों व्युत्पत्तियों का एक ही भाव (अर्थ) है। इसी आधार पर त का ट में अथवा ट का त में परिवर्तन होना कहा जाता है।

**कु०** पोल्/पोलिस्/पोलिछ/पोलीनु/पोल्नु = सेंकना, पकाना, घी बनाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया/निर्मित, पक्व/पका हुआ या पूर्णत: निर्मित/पकाने की क्रिया का संचालन/पकाना, बनाना, छानना, गूंथना, बेलना, देना आदि कार्य।

प्वल्, प्वला = पकाना, मथना, निर्माण कार्य, मधुमक्खी का छत्ता, छत्ते में स्थित अण्डे और लारवा।

**ग्री०** πολις (polis) - पोलिस्/पोल्इ स (छ)/पओलिस/पओ लिज्/प्वलिस्/प्वलाइस् (छ) = नगर, नगर राज्य, राज्य।

**व्या०** कुमाउनी और नेपाली में पोल्, पोल्नु आदि का अर्थ पकाना और भोजन बनाना है। यास्क के अनुसार पकाने की क्रिया में उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया या क्रिया कलाप समाहित होते हैं (निरुक्त १/१/११)। किसी क्रिया या आख्यात का ज्ञान उसकी सम्पूर्ण (प्रारंभ से लेकर अन्त तक) की प्रक्रिया के आधार पर होता है। इस आधार पर 'पोल्' आदि शब्दों के आख्यात (क्रिया) के अन्तर्गत अन्न संग्रह, कूटना, पीसना, अग्नि जलाना, पकाना, भोजन वितरित करना, बर्तन धोना आदि कार्य आ जाते हैं। परिवार के सन्दर्भ में इसका भावार्थ पारिवारिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए आवश्यक व्यवस्था, संचालन और नियन्त्रण है। इतनी सारी व्यवस्थाएँ एक व्यक्ति नहीं कर सकता है अत: इसमें कार्य का विभाजन कर दिया जाता है। 'प्वला' (छत्ता) के सन्दर्भ में भी इस शब्द के भीतर मधुमक्खियों के राज्य (वृहद परिवार) के निर्माण, पालन-पोषण, प्रशासन, नियंत्रण आदि की सभी क्रियाएँ आ जाती है।

ग्रीक 'पोलिस्' के जो भिन्न उच्चारण ऊपर दिये गए हैं उनके अर्थ

क्रमानुसार इस प्रकार हैं– पका हुआ या निर्मित/बनाना या निर्माण करना है/पओ (निर्मित) से लिसना या निर्माण करना/निर्मित को ले जाना, प्रसार करना/प्वल् (छत्ते, घर) का निर्माण करना/प्वल् (अण्डों-बच्चों) का पालन पोषण करना। इस प्रकार 'पोलिस' शब्द में समूह की सम्पूर्ण क्रियाएँ एवं व्यवस्था (शासन, प्रशासन) के अर्थ (भाव) निहित हैं। यह इसके प्रयोग कर्त्ताओं पर निर्भर है कि वह इस शब्द को परिवार, नगर या राज्य में से किस व्यवस्था के लिए इसको रूढ़ बना लेते हैं अथवा उसको अन्य अर्थ (जैसे खाना बनाने की व्यवस्था) के लिए रूढ़ बना लेते हैं।

'पोलिस्' के अन्य उच्चारण एवं व्युत्पत्तियाँ इस प्रकार हैं–

पओ लइस (पवन लाना), पओ लिस (हवा में सुखाना, हवा को लीसना या आक्सीकरण), पवलिस (प्वलिस)। संस्कृत में 'पोलिस्' अर्थ के द्योतक शब्द हैं– पुल् (= बटना, निर्माण, वृद्धि, प्रसार- पोलति, पुलति, पुलाति, पोलयति); पुल (= प्रसार, फैलाव, वृद्धि); पुलस्त्य (= ब्रह्मा का मानस पुत्र, एक ऋषि, एक प्रजापति अर्थात् निर्माता एवं व्यवस्थापक); पोल (= वृद्धि, ढेर, प्वला (कु०), पुला (कु०); पोलिका (रोटी, हलुआ); पौलि (अन्न, पूरी, घी में तली वस्तु, कु० पोल्यौ, पोलीऔ); पुलिश, पौलिश (= सिद्धान्त, सूत्र अथवा व्यवस्था के नियम या सूत्र बनाने वाला; उनको लागू करने या व्याख्यायित करने वाला)।

ग्रीक 'पोलिस' और संस्कृत 'पुलिश' 'पौलिश' आदि शब्दों के मूल को व्याकरण ग्रन्थों और शब्द कोशों से व्याख्यायित करना कठिन है। इन ग्रंथो में इनकी शाश्वत यांत्रिकी के स्थान पर उसके 'धातु' का संकेत मात्र होता है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान के लिये उस यांत्रिकी का ज्ञान होना आवश्यक है जो क्रिया को सम्पन्न करती है, क्योंकि इसी क्रिया के आधार भाव (अर्थ) उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये पोलिस् या पुलिश को पोल् या पुल् धातु से व्युत्पन्न कहा जाता है, यदि इसके बीच प्वल् या प्व् धातु को ले आया जाय तो भ्रम की स्थिति का निवारण नहीं होता है। अतः किसी भी भाषा के मानक शब्दों की व्युत्पत्ति लोकभाषा (श्रुति) के आधार पर की जाती है तो उसके वैज्ञानिक स्वरूप का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। लोक में हम 'ओ' को 'वो' में परिवर्तित होते हुए देखते हैं जैसे जाओ से जावो या जाव; आओ से आवो या आव। यह प्रवृत्ति प्राचीन हित्ती भाषा में विशेष रूप से प्रचलित थी जैसे पोल् का प्वल् बन जाना, अथवा प्वल का पोल् या पुल् बनना। इस प्रवृत्ति के कारण कुमाउनी में दोनों प्रकार के शब्द लोक में प्रचलित हैं, जैसे झ्यड़-झेड़ (कटीली झाड़ी का ढेर), ग्वरु-गोरु (गाय), ख्वल-खोला (पर्वतीय नाला, नदी), ज्वत-जोत (जोतना), व्यल-बेल (लता, बेलना, बेलि, कटोरी), ड्वल-डोला, भ्यल-भेल (पर्वत की ढलान) आदि। अनेक ऐसी भी प्रवृत्तियाँ है जिनको हम श्रुति (लोक भाषा) के आधार पर स्पष्ट कर सकते

हैं। कुमाउनी में भाषा विकास और प्रयोग की समस्त प्रवृत्तियाँ सुरक्षित एवं विद्यमान हैं। इसके आधार पर शब्दों की व्युत्पत्ति एवं उनके वैज्ञानिक स्वरूप को देखना और समझना सहज हो जाता है।

## कुमाउनी : अंग्रेजी

**कु०** सटान = ऊबड़, खाबड़, चट्टान।
**प्रा०अं०** stan- सटान/स्टान = पत्थर।
**व्या०** जो परस्पर सटकर ठोस रूप ग्रहण कर लेते हैं वही स्टान/सटान है। अथवा परस्पर सटी हुई वे वस्तुएँ जो इस् (आक्सीकृत द्रव) को 'तानते' (सम्प्रसारित) करते हैं वे भी (इ) स् तान या सटान हैं, जैसे कूटने पीसने वाली वस्तुएँ, नहरें आदि।

**कु०** भैछ/बहै छ = हो गया है (भूतं कालिक)/बह गया है (किसी क्रिया का सम्पन्न हो जाना)।
**प्रा०अं०** waes- वैस/भयाएस (छ)/वअै स > बहैस (छ) = था।
**व्या०** शरीर में किसी क्रिया के सम्पन्न होने और उसके दूसरी ओर बहकर चले जाने की स्थिति 'बहैस/बहैछ' या 'भैछ/भऐ छ' को 'था' या भूतकालिक क्रिया के रूप में रूढ़ कर लिया गया है।

**कु०** ह्वल्क/हल्क = हिचकोले लेना, हिचकी, हिलना।
**प्रा०अं०** hwylc - ह्विल्क/हविल्क/हविल्च = कौन (which) ।
**व्या०** हव (hw = हवा) के कारण एकाएक जो हिचकोले या ध्वनि आती है, उसके अज्ञात परिणाम न जानने के कारण ही ह्वल्क का अर्थ प्रश्नवाची 'कौन' बना है।

**कु०** हव/हवा = वायु।
**प्रा०अं०** hwa - ह्वा/हवा = कौन (who)।
**व्या०** यह हवा या तूफान की अपनी ही गति से उत्पन्न ध्वनि पर व्युत्पन्न शब्द एवं अर्थ है।

**कु०** कवै/क्वीड़ = काकवार्ता, काक ध्वनि/वार्तालाप, वार्ता।
**प्रा०अं०** cwaed - क्वैद/कवैद/क्वीड़ = कहना।
**व्या०** शरीर लोक में गले के कव्वै से निःसृत रस कवै कहा जाता है। जब यह ग्रास के साथ मिश्रित होता है तो रासायनिक क्रिया से जो ध्वनि निकलती है वही वार्ता या कवैद/क्वैद/क्वीड़ है।

**कु०** नइस्, नइछ्/निस् = नहीं है/जाना, अपने स्थान से हटा हुआ।

प्रा०अं० nis - निस्/नइस् (छ) = नहीं है।
व्या० शरीर में आक्सीजन (= इस्) का अभाव न + इस् (= नहीं है) तथा उसी का बहना (नावन) नयि + स् (= जाना) है।

कु० आबड़ी भै छन/- भियातिओं/-भएछन = आबड़ी (बड़ी) बनाना या बनना।
अं० - abreviation - एब्रीविएशन = संक्षिप्त करना।
व्या० दाल और पेठा मिलाकर जो बड़ी बनती है, वह संक्षिप्तीकरण है। अमावट, सोनपपड़ी, गन्ने के रस से गुड़, रबड़ी, खोवा आदि बनाना संक्षिप्तीकरण ही है।

कु० आभ् दओ मिन (मईन) = आभ् (ऊष्मा, अग्नि) देने से ही महीन (मिन) होता है या पकता है।
अं०abdomen - एब्डोमिन/एब्दोमिन/अभ् दओ मिन = आमाशय, पेट, अग्न्याशय।
व्या० 'एब्डोमिन' लैटिन से लिया गया शब्द है। आब्/आभ्/अभ् का अर्थ ताप या ऊष्मा तथा ऊष्ण द्रव है। संस्कृत में इसे 'जठर' कहा गया है। यही अभ्/आभ् या आब् देता है, तथा इसी से भोजन महीन (मिन) होता है। इसी क्रिया के आधार पर अग्न्याशय को 'आभ् दओ मिन' कहा गया है।

कु० आ बल/अ बले = जिसमें बल (जैसे रस्सी का बल) आ जाता है/अ (नहीं, बिना) + बले (जला, जला हुआ) = जिसकी ऊर्जा जली न हो।
अं० able- एबल/आ बले/अ बले = योग्य।
व्या० अंग्रेजी a का उच्चारण 'ए' किया जाता है, परन्तु भारतीय भाषाओं में यह अ या आ हो जाता है। 'एबल' की व्युत्पत्ति ऊपर कर दी गई है।

कु० आब्/अभ् सिन्त = अग्नि, ऊर्जा का सो जाना या समाप्त हो जाना।
आभ् छइन्त = अग्नि है ही नहीं।
अं० absent - ऐब्सेन्ट/आब् सिन्त/आभ् छइन्त = अनुपस्थित।
व्या० आब् (ऊष्मा) या आभ् के कारण शरीरस्थ द्रव्य या जीवाणुओं में जाने-आने की शक्ति होती है। जब आभ् विलीन हो जाती है तो इसे अग्नि का सो जाना (कु० सिनु) कहा जाता है। अग्नि के सो जाने से द्रव्य या शरीरस्थ जीवाणु वांछित स्थान पर नहीं पहुँच पाते है, यही अं० का अब (आभ्) सेन्ट (सिन्त) है अथवा अग्नि का न होना (छइन्त) भी ऐब्सेन्ट है।

कु० मओनि/मनि, मणि = दही का जामन/मणि, मनका।
अं० money - मनी/मओनी/मओनेय/मोनेय = रुपया, धन।
व्या० शरीर-लोक में वह रसायन मणि, मनि, रुपया कहे जाते हैं जो भोजन का पाचन करते हैं। चूंकि ये अन्न में धनात्मक आवेश उत्पन्न कर उन्हें गतिशील एवं परिपक्व करते हैं, अतः इन्हें मओनी या मनी (मणि) कहा जाता है। यही कार्य समाज में रुपया करता है अतः उसे भी धन या मनी (मणि) कहा जाता है।

कु० डोल्लार/डोलर/ड्वलार = डोलने वाला/डुलाने वाला/डोली में झुलाने वाला, अर्थात् जो स्वयं भी गतिवान हो तथा दूसरे को भी गति देता है।
अं० dollar - डॉलर/डोलर/डोल्लार = अमरीकी मुद्रा का नाम।
व्या० इसकी व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। शेष व्याख्या 'मनी' की तरह है।

कु० हवर्ल/हवर्ल = हवा से उड़ाना, हवा का चक्कर काटना, घूमते हुए जाना।
अं० whirl - ह्वर्ल/ह्विर्ल/वहिर्ल = घूमना, जाम, चक्कर काटना।
व्या० 'ह्विर्ल' प्राचीन अंग्रेजी (ऐंग्लो सेक्सन) whirlen (वहिर् लिन) अथवा hwirlen (हवइर्लिन) से व्युत्पन्न है। ऐंग्लो सेक्सन का यह शब्द स्वयं पुरानी नार्स hvirfla ह्विरफ्ला/हविरफला से व्युत्पन्न है। हविर (हवा से) + फ्ला (कु० फलाप/फल्लाप = लांघना, दौड़ना)।

कु० हवाइत = हवा की तरह पारदर्शी, या वहनशील अथवा हवा से प्रभावित।
अं० white- ह्वाइट/हवाइत = सफेट, श्वेत।
व्या० 'ह्वाइट' ऐंग्लोसेक्सन भाषा (प्रा०अं०) के hwit (हवाइत/ह्वाइट/हवीत) से व्युत्पन्न है। जल या अन्य द्रव्यों में जब हवा लगती है (हवा का मिश्रण) तो वे भी श्वेत हो जाती हैं, इसी का नाम 'हवाइत' = हवा से प्रभावित अर्थात् श्वेत कहा गया है, जैसे पकने पर पेठे का फल।

कु० ह्वल/हवोल् = तेज हवा के झौंके से जल प्रवाह का ह्वल-ह्वल या हवोल्-हवोल् ध्वनि के साथ लुढ़कते हुए बहना।
अं० wheel - ह्वील/वहील/ह्वयल = चक्र, चक्का या गोला कार वस्तु।
व्या० 'ह्वील' ऐंग्लो सेक्सन के hweol (हवई ओल्/हवीओल) से विकसित है। कुमाउनी के अनुरूप हवई (= हवा से) + ओल (गूथने, आटा ओलने की क्रिया)। शरीर में यह क्रिया हवा के दाव से भोजन तंत्र की दीवालों के चक्राकार घूमने से संम्पन्न होती है अत: हवई ओल् से हवील > ह्वील बन गया है।

कु० हवैनि/हवाइनि/हवैं = तेज हवा या तूफान चलना या चलने का काल।
अं० when - ह्वैन/हवैन/हवैं = उस समय, जब।
व्या० 'ह्वैन' ऐंग्लो सेक्सन hwaenne (हवैन्ने), hwanne (हवान्ने/हवन्ने) से विकसित है। मूल अर्थ हवा या तूफान का चलना या हवन्नै (हवा द्वारा की जा रही क्रिया) है, इससे यह अर्थ ले लिया गया है कि 'जब' तूफान (हवा) चल रहा था तो 'उस समय' मैं वहाँ था अथवा नहीं था। अत: हवैं आदि का अर्थ 'उस समय' या 'जब' के रूप में रूढ़ कर दिया गया है।

कु० बहेर/बहेरे; हवैर/हवाइर = बह कर चले जाना; जहाँ पर हवा से विशेष क्रिया संपन्न होती है।
अं० where - ह्वैर/हवैर/वहेर/वहेरे = किस स्थान में या पर, कहाँ।

व्या० 'ह्वेर' ऐं० से० के hwaer (ह्वैर/हवैर/हवाइर) से विकसित है। इसका अर्थ है हवा से बहकर कहीं चले जाना अथवा जहाँ पर हवा द्वारा विशेष क्रिया सम्पन्न हो रही हो। इसी 'हवैर' या 'वहैर' को प्रश्नात्मक रूप में रूढ़ बनाया गया है। अंग्रेजी और ऐग्लो सेक्सन में उच्चारण समान हैं, परन्तु अं० में h और w का स्थान परिवर्तित कर दिया गया है। शब्द संस्कार की यह अजीब विधा है।

कु० भै पएन = बटना या निचोड़ने की क्रिया का संपन्न होना।
अं० weapon - वीपन = अस्त्र-शस्त्र, हथियार, रक्षा या आक्रमण के साधन।
व्या० 'वीपन' ऐं०से० के waepen (वैपएन/भै पएन) से विकसित है। शरीर में रक्षा का अर्थ पोष्य प्राप्त करना और कष्ट (शत्रु) को दूर करना दो प्रमुख कार्य होते हैं। यह दोनों क्रियायें वायु की गति से भोजन प्रणाणी को पयाने, निचोड़ने, बटने (पएन) से सम्पन्न होती है। अत: जिनको पया जाता है वह अस्त्र-शस्त्र कहे जाते हैं। उसी क्रिया के आधार पर समाज में भी भैपएन/वै पएन/वीपन/वै (वहै) पएन का अर्थ हथियार के रूप में रूढ़ बन गया है।

कु० वांग्, बांग्,बांगो/वांग्यूनु, बांग्यूनु = शाखा, टेढ़ी घुमावदार लकड़ी/पीटना, लकड़ी से पीटना, कूटना, छिलके उतारना आदि क्रियायें।
हांग्/हांग्यूनु = शाखा/शाखा से पीटना, छिलके उतारना या शाखा में रखना।
अं० whang - ह्वांग/वांग् = पीटना, दरेसना (छिलना), टुकड़े करना।
व्या० यह शब्द स्काटिश एवं दैनिक बोलचाल का है। कुमांउनी अर्थ में इसकी व्याख्या हो गयी है।

कु० होत/हवोत् = होना; हवा की क्रिया विशेष; हवा चलना, चलाना।
अं० what - ह्वाट/वहात् > वहाट (वहने से उत्पन्न टक्कर) > हवाट्ट = यह है, प्रश्नवाची क्या?
व्या० 'ह्वाट' ऐं०से० के hwaet (हवैत/ह्वैत/ह्वैट) से विकसित है, यह स्वयं hwa (हवा/ह्वा) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'यह है' लिया जाता है। हवा का चलना ही उसके होने की दशा है, जब यह अन्य वस्तुओं से टकरा कर अनेक प्रकार की ध्वनि करती है तो उसी ध्वनि के अर्थ जानने की समस्या का नाम हवाट्/ह्वाट है, (हवाट् = हवा की आहट)।

कु० वार नि आन/वार नि औनु = इस ओर (वार) मत आना/इस ओर न आने की चेतावनी देना या सावधान करना।
अं० warn - वार्न = चेतावनी देना, सावधान करना।
व्या० 'वार्न' कु० वार न् (आना) का संक्षिप्त रूप है। अं० 'वार्न' ऐं०से० के warnian (वार नि आन/वार नइयन) से विकसित है। शरीर में इस पार (वार) से उस पार (पार) जाने का एक ही मार्ग होता हैं। यदि वार से पार की ओर नावन

(नइयन) होता है तो पार वालों को चेतावनी या सावधान कर दिया जाता है कि 'वार' वाले आ रहे हैं, सावधान! पार वाले इस समय न आयें। यह एक तरफा संकरे पुल की सावधानी की तरह है। इसी क्रिया का अर्थ सावधानी या चेतावनी लगाया जाता है।

**कु०** भाराँत/भराँ/भरात = भारी होना/भर जाना/भरना।
वरात/वारात/वराँत = वराना (नीचे को खिसकाना)/वार (इस ओर लाना या वारण करना)/ नीचे (दूसरी ओर) जाने की क्रिया का होना।

**अं०** warrant - वारन्ट/वराँत/वाराँत्/भराँत् = सक्षमता, कार्य करने का अधिकार, बुलाने की सूचना।

**व्या०** अंग्रेजी 'वारन्ट' पुरानी उत्तरी फ्रैंच warant (वाराँ/वाराँत्/भराँ/भराँत्/वारन्ट) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ बुलाना या प्रतिपक्षी था। शरीर में द्रव्य भरने से भार बढ़ता है यही भाराँत् या प्रति पक्षी का दबाब है। इस दबाव से मस्तिष्क को सूचना जाती है कि भार का निवारण (वारण) करना है। भार बढ़ने या भर जाने पर स्वत: अंग प्रत्यंग उसको वार यां पार जाने (वारण) देते हैं यही कार्य का अधिकार है। इन्हीं क्रियाओं के आधार पर 'वारन्ट/भाराँ/भराँ/वार आन्त' का अर्थ सक्षमता आदि लोक में रूढ़ बन गया है।

**कु०** भ्याल्, भिआल (भियाल) = पर्वत की चढ़ाई या उतार, पर्वत रूपी दीवाल, रोक।

**अं०** wall - वॉल/भ्याल/भ्याल्ल = दीवार, रोक।

**व्या०** 'वाल्' ऐं०से० के weall (विआल/भियाल्ल) से विकसित है, यह स्वयं लैटिन valus {वालुस/बाल्लु स (छ) = बालू का ढेर, अवरोध} से व्युत्पन्न कहा जाता है।

**कु०** वेर/वेरो/वेरीनु = चक्की का छिद्र/प्रवाह/प्रवाहित होना या करना, गिराना।
भ्यार = बाहर (वाइर > बाहिर)।

**अं०** wair - वैर/वाइर (बाहिर)/भ्याइरवार = व्यय करना, व्यय होना।

**व्या०** 'वार' शब्द स्काटिश है, अंग्रेजी में यह ware (वार/भ्याइर/वारे) भी है। यह वार-पार करने से और बाहर (भ्यार) करने की क्रियाओं से सम्बद्ध है। 'वेर' उच्चारण होने पर यह चक्की यांत्रिकी की क्रिया से भी सम्बद्ध है।

**कु०** झील/जइयाल/झ्याल = झील, कुन्ज/जाने के लिये तत्पर, उत्साह, तरंग, हिलोर।

**अं०** zeal - जील/झील = उत्साह।

**व्या०** जिस द्रव्य में परिपक्वता से आगे बढ़ने (जइयल) की तरंगे हिलोर लेती हैं वह जील/झील है। अथवा जब जी (मन, इच्छा) उत्पन्न (आल) हो जाता है तो

वह भी जील या झील है जो गन्तव्य को जाने की झाल/झेयाल/झ्याल (विद्युत तरंगें) से सम्पन्न होता है। ग्रीक में यह zelos {जीलोस/झे लओस/गीलोस (गीला + ओंस, ऊष्मा)} और zeal (झ्याल/जील/जी आल (याल) है।

**कु०** झौन, झौनि/झओनि = झन-झनाहट/जहाँ तक कम्पन जाय।
**अं०** zone - जोन/झौन्, झओनी/जओनो = क्षेत्र, विभाजित क्षेत्र का एक हिस्सा।
**व्या०** जहाँ तक कोई वस्तु आती जाती है वह 'जओनी' या जओन है। अथवा जहाँ तक 'झौनि' (कंपन) की पहुँच है वह भी एक 'जोन' (क्षेत्र) है (ग्री० zone-जोने/झओने)।

**कु०** गएर, गइअर/जएर, जइयर = अर (केन्द्र) से जाने वाले/ अर (केन्द्र) की ओर जाने वाले।
**अं०** year - ईयर/गइअर/जइ यर = वर्ष।
**व्या०** ऐं०से० में gear (गइअर/जइयर/गीअर) शब्द वर्ष के लिये प्रयुक्त होता था। अर (केन्द्र) से जाना और पुन: बाहरी अरों (शाखाओं से) केन्द्र में आने के काल का नाम 'ईयर' {गइअर/जइअर (यर)} है।

**कु०** अकूत/अकूट = बहुत अधिक, जिसे कूता या संभाला न जा सके, अथवा आंका न जा सके, जिसका वर्णन न किया जा सके/जिसे कूटा न जा सके, अत्यधिक।
**अं०** acute - ऐक्यूट/अकूत/अकूते/अकूटी=तीव्र, अत्यधिक तीव्र, चुभन वाला।
**व्या०** कुमाउनी/'अकूत' और अंग्रेजी 'एक्यूट' दोनों एक ही शब्द हैं, केवल उच्चारण भिन्नता है। दोनों अक् (= अग्नि, आक्, आँक) + ऊत/ऊतई (फैलना, रुई की तरह उड़ना, चुभना) से व्युत्पन्न हैं। आक के रस की जलन या प्रदाह हो अथवा आँक (अग्नि) का प्रदाह; दोनों असह्य, तीव्र और अकूत/अकूट (सभांलने या ग्रहण करने की क्षमता से बाहर) इसलिये है कि उसके प्रदाह से अंग-प्रत्यंग पहले ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। अथवा अक् (अग्नि) का ऊत (उतक, स्नायु) में प्रवेश कर जाने से भी अकूत, असह्य स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

**कु०** आब् सौल्यूत (ति)/ अब् शूल्यूति/आब् छोल्यूत = अब सौल काँट से छेदन करना/अब शूल चुभाना/अब छोलना (छीलने की क्रिया करना)।
**अं०** absolute - ऐब्सोल्यूट/अब-/आब-/आभ् सौल्यूति = सर्वोच्च, शुद्ध, निरपेक्ष, पूर्ण, निर्बाध, निरंकुश।
**व्या०** कुमाउनी का अब् या आब् भी आभ/आब (= जठर) से व्युत्पन्न है। जो जठर या ऊष्मा उपरोक्त क्रियाओं को करती है वही 'ऐब्सोल्यूट'/अब (= क्रमश:) सौल्यूत, शूल्यूत और छोल्यूत है। लै० absolvere (अब् सौल् भए रे)।

कु० आंकिद/आंचिद/आँसी द = आंक देना/आंच देना/हंसिया की तरह काटना।
अं० acid - ऐसिड = तेजाब। व्या० उपरोक्त कुमांउनी शब्दों में व्युत्पत्ति निहित है। सं० में इसे ही 'असि' कहा गया है जो काटता है, या गला देता है।
कु० आँचतिओं/आंचतिओन/आंकतियों = आंच (उष्मित होने) की क्रिया का प्रारंभ होना।
अं० action - ऐक्शन = कार्य, क्रिया। व्या० आंच या आँक देते ही क्रिया प्रारंभ हो जाती है अत: कु० आँकतियों/आंचतिओं से अं० का ऐक्शन बना है, अक्षर समान हैं केवल उच्चारण भिन्नता संधि के कारण हैं। लोक का नासिक्य 'आँ' प्राय: लिखित में सामान्य शब्द बना दिया जाता है जिससे मूल का सरलता से ज्ञान नहीं हो पाता है। कु० में अग्नि की उष्मा को 'आँच' या आँक तथा 'अक' की जलन को 'आक' कहा जाता है। लै० actio (आक्तिओ/आच्तिओ)।

कु० आँच्त/आँक्त = ऊष्मित होना।
अं० act - ऐक्ट = क्रिया, कार्य जो हो रहा हो। व्याख्या 'ऐक्शन' की तरह है। लै० actus (आक्तुस/आच्तउस)।

कु० आद दरेस/आद धरेस/ = आद (नमी) को बनाना (खोदना)/आद को निर्दिष्ट स्थान पर ले जाना, रखना (धरना)।
अं० address - एड्रेस = पता (जहाँ जाया जाय, या जहाँ कार्य मिले)।
व्या० कुमाउनी शब्दों का ही संधि युक्त उच्चारण 'ऐड्रस' है। सं० में यही 'आद्', 'अद्' कहा गया है। शरीर ब्रह्माण्ड में आद्, अद् दरेस (खोदना, लेना) वह स्थान या पता है जहाँ भोजन (अद्) मिलता है, तथा जहाँ भोजन पहुँचाया जाय।

कु० आदिया/आ दिएउ = जाने वाले को विदाई देने के लिये 'जाओ' न कह कर घुमा कर आदिया (= फिर आइयेगा) कहा जाता है।
अं० adieu - अड्यू/ऐड्यू/आदिएउ = शुभ विदाई, शुभ गमन। व्या० यह कु० आदिएउ (पुन: आइयेगा) का रूपान्तरण है। यह इसलिए कहा जाता है कि शरीर में सभी गति चक्रीय ढंग से होती है जो भोजन लेने आता है वह दूसरे चक्र में पुन: आकर भोजन लेता है। वहाँ लोक की तरह सर्वत्र होटल नहीं होते हैं।

कु० अफारो/बफारो = तेजी से निकलती, फैलती भाप। इसे अ फार/बफार भी कहा जाता है। इसका अर्थ है जो दूर से आये और तीव्र गति से दूर जाये।
अं० a-far - अॅ-फार/ए-फार = से, दूर से।

कु० आ गएन/आ जएन = बार-बार आना और जाना। अग् आइन-अग् जाइन की क्रिया।
अं० again - अगेन = पुन:-पुन:, बार-बार। व्या० यह शब्द अग्/आग् = अग्नि से बना है, शरीर में यह क्रिया जठर से अथवा प्राणवायु से बार-बार दुहराई जाती

है इसीलिये अग् आइन/अगैन/अगेन का अर्थ बार-बार लगा लिया जाता है।

**कु०** आग्इ तातइ/आग्इ ताते = आग से तप्त हो जाना, बैचेन हो जाना, (तातना, तातनु, तत्नु, तातो)।
**अं०** agitate - एजीटेट/आगइ ताते = उद्वेलित होना, बैचेनी का व्यवहार करना। **व्या०** यह उद्वेलन आग द्वारा पानी के तातने (खौलने) से ही होता है। अत: कुमांउनी शब्द आग्इ तातई ही अं० एजीटेट है केवल ग का ज में परिवर्तन हुआ है अथवा ग के बदले ज शब्द चुना गया है।

**कु०** अग्नातो = नाता होने से जिसे मुखाग्नि देने का अधिकार होता है।
**अं०** agnate - एग्नेट/अग्नाते = पिता पक्ष का सम्बन्धी या नातेदार।

**कु०** अग्वो - आग से से प्रभावित, पहले का, पीछे (भूतकाल) का।
**अं०** ago - अगो/एगो = भूतकाल से सम्बन्धित। **व्या०** अग्नि ही किसी के वर्तमान स्वरूप को परिवर्तित करती है अत: सापेक्षिक रूप में उसका पूर्व स्वरूप भूतकाल से सम्बन्धित हो जाता है।

**कु०** अगौनि/अघौनि = अग्नि प्रज्वलन/तीव्र अग्नि का ताप (विकिरण)।
**अं०** agony - अगोनी/ऐगोनी = तीव्र दर्द, तड़प, यंत्रणा। **व्या०** कु० अघौनि ही अंग्रेजी की ऐगोनी/अगोनी (सं० अघ) है।

**कु०** अल्जा/अल्गा = उलझाना, बांधना/अलग करना (अल्ज, अल्ज्यूनु, अल्गून)।
**अं०** alga/algae - अल्गा/ऐल्गा/ऐल्गी = काई, जलीय पौधे। **व्या०** काई ही एक ऐसा द्रव्य है जो सर्वप्रथम जल में परस्पर बन्धन स्थापित करती है, जिसे अल्जाना (कु०) या बांधना कहा जाता है। यही (काई/अल्गा) एक से अधिक की वृत्ति को विकसित कर अलगाती भी है। अं० में यह संज्ञा है तथा कु० में क्रिया-विशेषण है। **व्यु०** अल = रसायन (अल्ल (कु०) का रस) + जा/झा (जाना, छा जाना, बांधना)। अल्गा (अल् + गआ) = वह रसायन जो अलगाता है।

**कु०** अल्जिआ = उलझना, अल्ल के कांटो में उलझ कर कांटे चुभना एवं दर्द आदि (कु० अल्ला का भूड़ में अल्जीनु = अल्ल की घनी झाड़ी में उलझना)।
**अं०** algia - अल्जिआ = दर्द । **व्या०** यह शब्द ग्रीक algos (अल्गोस) से लिया गया है। अं० में इसे suffix (अन्त्य प्रत्यय) के रूप में प्रयोग किया जाता है। अल + जिआ/अल + झिआ (कु०) = अल्ल के कांटो या रस से झुन-झुनी उत्पन्न होना। इसी से दर्द होता है। यह झन-झन क्रिया रासायनिक समीकरण में उलझाती अर्थात् बंधनकारी भी होती है और अलगाती (विभाजन) भी करती है, दोनों ही स्थितियों में दर्द होता है। यही ग्री० 'अल्गोस' है। जब तक हम ग्रीक अल्गोस, अंग्रेजी अल्जिया, कुमाउनी अल्ज, अल्जनु का पारस्परिक सम्बन्ध न जोड़ेगें ग्रीक अथवा अंग्रेजी के इन शब्दों की व्युत्पत्ति सम्भव नहीं है। अधिक से अधिक

भाषाविद कहेंगे अल + जिया/गिया इससे इस शब्द के मूल तक नहीं पहुँचा जा सकता है।

**कु०** अल्ल = एक घास विशेष जिसमें कांटे होते हैं, जिसकी चुभन पीड़ादायी होती है।
**अं० all** - आल/अल्ल = सब। **व्या०** 'आल' से 'सब' अर्थ कैसे निकलता है? जब तक कोई पदार्थ न होगा और उससे क्रिया विशेष न उत्पन्न होगी तो अर्थ कैसे बनेगा? अत: सर्वप्रथम अल्ल का होना आवश्यक है जो झन-झन, उत्पन्न कर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। वह चेतना तत्त्व सब में व्याप्त है अत: 'अल्ल' से 'सब' अर्थ ले लिया गया है। अं० 'आल' में केवल उच्चारणगत भिन्नता है। 'अल्ल' के अन्य कु० नाम हैं आल्लो, अल्ला। यह स्थिति कुछ हजार वर्षों की नहीं वरन् लाखों वर्षों पूर्व की है। शरीर ब्रह्माण्ड के 'अल्ल' के रस को 'अल्' धातु के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिसमें सब तत्त्वों का मिश्रण होता है। इस रूप में भी अल् से व्युत्पन्न 'आल या आल्ल' शब्द से सब, सम्पूर्ण अर्थ निकलता है।

**कु०** अल्लइ झेछन = अल्ल नामक घास को चुभाना। इससे झन-झनाहट उत्पन्न होती है, शरीर में फफोले आदि पड़ जाते हैं। (कु० त्वे अल्ला ले झेसि द्यूनु = तुझे अल्ल से दंशित (झे/झेसि) कर दूंगा।
**अं० allegation** - ऐलीगेशन = आरोप लगाना। **व्या०** अल्लइ जा सन (छन)/अल्लइ झा सन (छन) = अल्ल के जाने की अथवा अल्ल के छा जाने की अनुभूति। यह अनुभूति अल्ल के रसों की रासायनिक क्रिया से उत्पन्न चुभन से होती है। इससे ही अल्ल पर दर्द उत्पन्न करने का 'आरोप' लगाया जाता है।

**कु०** अल्ल् लिआन छ, अल्ल लिऊनु छ/अल्लियानस (छ)= अल्ल को लाना है/ अल्ल के रस का थक्का बनना या उसे घोल कर गोंद की तरह उपयोग करना।
**अं० alliance** - ऐलायन्स/अलायन्स = एकता बनाना, संधि-करना।
**व्या०** अल्ल का गाढ़ा रस चिपचिपा व फिसलनदार होता है जिसमें कोई भी वस्तु चिपक जाती है। कु० लोक गीतों में 'अल्लो को रोट् सिन्नु को साग' जैसे कथोपकथन मिलते हैं। अल्ल की जड़ का लुआब मडुंवा के आटे में भी मिलाया जाता था। इससे रोटी सरलता से बेली जा सकती थी। अल्ल के रस अल् की उपस्थिति ही अं० ऐलाइन्स/अलायन्स/अल् लाइन्छ या संधि का कारण बनता है।

**कु०** अमोनि/अमोनि (आ) = आम की गंध/आम की गंध (का आना)।
**अं० ammonia** - ऐमोनियाँ/अमोनिया/अम् मओनिआ (या) = एक गैस, या उड़नशील तरल द्रव जो नाइट्रोजन एवं हाइड्रोजन के योग से बनता है।
**व्या०** लौकिक रसायनज्ञों ने इसे बहुत बाद में बनाना सीखा, परन्तु प्रकृति में यह

आम की गन्ध में पहले से विद्यमान है। इसी आधार पर 'अमोनि' से 'अमोनिया' बना है। यह गंध आम की खटास में विद्यमान होती है।

कु० अम् निष्टि/अम् निष्टइ/अम् निष्टनु = अम् (खटास) की समाप्ति या खटास का बहिर्गमन।

अं० amnesty - एमनेस्टी/अमनेस्टी = सार्वभौम क्षमा, आम माफी।

व्या० आम का गुण है कि खटास (लोक में परस्पर बैर) पकने पर मिठास में परिवर्तित हो जाती है। इसी आधार पर लोक में भी राजा या राज्य- युद्धरत पक्षों से उत्पन्न 'खटास' को समाप्त कर नये सिरे से राज्य शासन प्रारंभ करना चाहता है तो वह पुरानी खटास को भूल आता है या क्षमा कर देता है। 'आम' शब्द स्वयं फल वाले आम का ही प्रतिनिधित्व करता है। शब्द कोशों में अं० अमनेस्टी, ग्रीक अमनीस्टिया से व्युत्पन्न कहा जाता है, जो कु० 'अम्निष्टि' के समानान्तर है।

कु० अमोईनु = दही या माँड़ में अम् (खटास) उत्पन्न होना।

अं० amoeba - अमोइबा = एमीबा, एक कोषीय जीव। व्यु० अम् (खटास)+ ओइ (=बनाना, भक्षण करना, ओसाई करना) + बा (= है)। जो जीवाणु दही आदि में अम्लीय गुण उत्पन्न करे वही 'अमोइबा' है। 'अमोइबा' का 'बा' भोजपुरी भाषा में सर्वत्र बोला जाता है।

कु० आम् पली फिके छन = आम पके है (उन्हें) फेंकना (बिखेरना) है अथवा आम् पली पइकए छन = आम पके हैं इन्हें बटना (फैलाना) है/फैला रहे हैं, देना है।

अ० amplification - एम्प्लीफिकेशन/अम्प्ली- = विस्तार करना, बढ़ाना, फैलाव देना। व्या० (i) छन = है। शरीर में फेंकने की क्रिया पई = बटना, निचोड़ने से भी सम्पन्न होती है जैसे भीगी धोती को बटें या निचोड़ें तो जल विस्तार को प्राप्त होता है। (ii) अम् = दही की खटास भी है। दही जब परिपक्व (पली/फली) हो जाती है तो उसे मथ कर मट्ठा, मक्खन, घी में विस्तार किया जाता है, अथवा अड़ोस-पड़ोस में दे दिया जाता है। इन्हीं क्रियाओं के कारण अम्प्लीफिकेशन का अर्थ विस्तार/वृद्धि होता है।

कु० अ नएस ठीसिआ = ठेस आने पर जो उसे संचारित न करे।
अ नएस थीचिआ = थेचने से उत्पन्न दर्द को जो नावन न करे।

अ० anesthesia/anaesthesia - अनेस्थीसिया/ऐनेस्थिसिआ = चेतनाहारी, चेतनावरोधक, संज्ञाहारी।

व्या० (i) कु० का ठ ग्री०/ अं० में 'थ' है। अत: ठेस या ठीस से उत्पन्न दर्द का जो नावन (संचार) न होने दे वही 'एनेस्थीसिया है। (ii) इसकी दूसरी व्यु० है— अ नएस थीचिया = थेचने (मारने, पीसने, कु० थेच्/थेचनु) के प्रभाव को जो नावन (संचारित) न करें।

कु० अन्ति/अन्तइ = दूसरी ओर/अन्यत्र का, विपरीत दिशा का।
अं० anti - ऐन्टि/अन्ति/एन्टी = विपरीत। व्या० केन्द्र के बाहर की दिशाएँ अन्तई (सीमा के बाहर) है, अथवा अन्टी (केन्द्र) के विपरीत भी 'अन्तइ' है।

कु० बासि लस/बासइ लस = बासी (पुराना) द्रव जो लसलसा हो गया हो। लस जो बास या गंध युक्त हो गया हो।

अं० bacillus - बैसिलस/बासीलस/बासील्लस = दण्डाणु, एक दण्ड (डन्डे) के आकार का जीवाणु। व्या० बासी या बैसी लस को बाकिल लस (कु०) भी कहा जाता है, बाकिल = गाढ़ा। इसमें निहित जीवाणु इसे लम्बाई के आकार में फैलाते हैं। इसे 'बाछी लस' (गोवत्स = गो रस से उत्पन्न गाढ़ा लस) भी कहा जाता है। पुराणों में वसिष्ठ के सम्मान में जिस गोवत्स की बलि देने की बात आती है वह यही 'बासी लस' है जो आटे में खमीर उत्पन्न होने से बनता है। लैटिन में इसे bacillum - बैसीलुम (कु० बासीलूँ/बाकिल्लूँ) तथा bacullum बाकुलुम तथा कु० में बाकुलौं (गाढ़ा, लुआव युक्त) कहा जाता है।
विशेष– तुलनात्मक भाषा शास्त्र उनको राहत देने वाला है जो भारतीय ऋषियों को निरामिष ही मानते हैं, जिनका कन्द मूल, फल आहार होता है। परन्तु उनके सम्मान में गो वत्स की बलि देने का प्रकरण विद्वानों के गले से नीचे नहीं उतर पाता है और वे कोई स्पष्टीकरण देने की स्थिति में नहीं होते हैं। कुमाउनी भाषा के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि पौराणिक 'गो वत्स' या कु० बाछी ही बासी लस है जो प्रोटीन एवं स्टार्च में खमीर उठने से बनता है। चूंकि सभी रसायनों का प्रतीक 'गो' (= गोरस–दूध, दही) है अत: उसके विकास के अगले चरण को 'गो वत्स' कहा जाता है। जो जीवाणुओं द्वारा स्वत: परिवर्तित होता जाता है। 'बासी' वह है जो 'बास' (गन्ध) बनाता है।

कु० बाख्/भाख्/भाक् ते रइया = जो लगातार बोलते रहता है। (कु० भाख्/भाक्, सं० वाक् = ध्वनि, शब्द)। कु० में 'वाक्' के ध्वनि, ग्रास या उगलना 'वाक्क' तीनों अर्थ हैं।
अं० bacteria - बैक्टेरिया/बाख्ते रइया = सूक्ष्म जीवाणु, सूक्ष्म जीवाणु समूह। व्या० bac - बाक् (कु० बाख) + टेरिआ (= टेरना, बुलाना, बोलना)। दूध को दही में परिवर्तित करने वाले सूक्ष्म जीवाणु दूध का भक्षण करते हैं, साथ में एक ध्वनि भी करते रहते हैं जिसे हम सौं-सौं की सामूहिक ध्वनि कहते हैं अथवा इसे जमावट होने का प्रमाण कहते हैं। यही बाख् या भाख् सं० में वाक् कही गयी है तथा "भाख टेरिया" को कीर्तन करने वाले 'भक्तों' के रूप में पुराणों में वर्णित किया गया है। भक्त वह है जो अदृष्य शक्ति का कीर्तन करता है। वर्षा ऋतु में खेतों के चारों ओर सायंकाल झींगुर की लगातार झंकार (सामूहिक गान) सुनाई देता है

वह भी प्रकृति के भक्तों की टेर (भजन/कीर्तन) ही है। इसी की छाया मनुष्य के भक्त होने या कीर्तन में होती है। जो लोग पुराणों के 'भक्तों' को केवल मनुष्य मान कर चलते हैं, उन्हें विज्ञान विशेषकर रसायन विज्ञान का ज्ञान कैसे हो सकता है? इसी का परिणाम है कि पुराणों का विज्ञान एक अन्धविश्वास बनकर रह जाता है। इसकी अनेक व्युत्पत्तियाँ हैं, एक अन्य व्युत्पत्ति है 'बास टेरिया' अर्थात् गन्ध का प्रसारण करने वाले अथवा बास तए रइया = जो गन्ध में ही रहते हैं अथवा बकते (वक्ते) रिया (रइया) = जो लगातार भक्षण करते हुए ध्वनि बिखरते हैं।

कु० इन कु आइ रई = ये कौन आये हैं (कु = कौन)।
अं० enquiry/inquiry- इनक्वाइरी/इन कु आइ रई = पूछताछ। व्या० कुमाउनी के चार अलग-अलग शब्दों (एक वाक्य) में पूछताछ या प्रश्न किया जाता है। अंग्रेजी में इन चारों शब्दों को संधि-द्वारा एक में मिला दिया गया है। लैटिन में 'इन कुइ रए रे' (inquirere - इन्क्वाइरीर)।

कु० पाथो/पातो = पत्ती आदि का गूल में जमाव/पत्तियों का अवरोध, रोक।
अं० patho - पैथौ — (ग्रीक pathos — पाथोस/पैथोंस) = अवरोध, रोग विकार।

कु० पाथोलागी/पाथोलागोछ = गूल में पाथा (अवरोध) लगना।
अं० pathology - पैथोलाजी/ पाथोलागी = रोग निदान विज्ञान, शरीर की जाँच पड़ताल कर रोग का कारण ढूढना।
व्या० जिस प्रकार धरती में गूल (कुलो/कुल) में पत्ती, मिट्टी आदि जमा होकर पाथा या पाता (अं०सिल्ट) जमकर अवरोध एवं अनेक परेशानी उत्पन्न करता है, उसी रूप में यूनानियों ने इसे शरीर की गूलों (रक्तवाहिनी, भोजन प्रणाली) में पाथा (अवरोध, विकार) लगने अर्थात् बीमार होने से जोड़ दिया है। 'पाथा' पत्थर बनने की पूर्व अवस्था है इसीलिए इसे 'पाथर' भी कहते हैं। 'लागी या लागो' का अर्थ लगने या जमा हाने से है। ग्रीक में इसे 'लोगोस्' से सम्बद्ध किया जाता है परन्तु कोई नहीं जानता है कि यह क्या है, केवल उसका अर्थ मात्र कर दिया जाता है। यह लग् धातु से बनता है। लगना या स्पर्श से शरीर में स्वत: बैचेनी हो जाती है, यह लगना (स्पर्श) चाहे लकड़ी (log) से हो या अन्य किसी वस्तु से, इससे स्पर्श जन्य प्रतिक्रिया में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। जिस प्रकार पाथा लगने से गूल बीमार पड़ जाती है (जलावरोध) और उसके निराकरण का उपाय किया जाता है, उसी प्रकार शरीर में 'पाथा' (अवरोध, विकार) को दूर करने के उपाय किये जाते हैं। यही पाथा + उससे उत्पन्न लागोस (स्पर्श) का विज्ञान है। अंग्रेजी में लागोस (छ) को लाजी/लौजी (logy) कहा जाता है, कु० में इसके लिये 'लाझी' 'लुग्गी' (लकड़ी) या 'लागी' अर्थात् उलझना, विकृत होना, चुभना शब्द प्रयुक्त होता है। लाझी, लाझा लगना, आदि प्राकृत शब्द हैं अं० में इसी को 'लाजी' उच्चारण दिया

गया है। लाझा या लाझी में 'स्पर्श' जन्य अनुभूति और निराकरण दोनों क्रियायें समाहित हैं। ग्री० लोगोस, अं० लोजी (लूझी) की व्यु० कुमाउनी कान् घुस्सि, नक् घुस्सि से की जा सकती है। यह शब्द लू + गूस (घूस) = लोगोस (लूगूस) है। कु० लू = लोहा, गूस या घूस = लोहे के प्रभाव से उत्पन्न विकार। रक्त में लोहा होता है, उसी से चुम्बकीय प्रभाव उत्पन्न होता है। रक्त में लौह (लू) युक्त रसायनों से जब चुम्बकीय प्रभाव समाप्त हो जाता है तो वह एक स्थान पर जमने लगता है जो अनेक विकार शरीर में उत्पन्न करता है। यह जमावट पाथा (patho) है तथा इसके स्पर्श से उत्पन्न बेचैनी (विकार का प्रभाव) 'लोगोस' है। इसी अर्थ में ग्रीक में 'लोगोस' का अर्थ शब्द, जानना, ज्ञान, कथन, वार्ता, वर्णन आदि होता है।

---

## कुमाउनी : पुर्तगीज

**कु०** फाँक्तो, फाँकनु, = फांकना, खाना, फंकी लेना।
**पु०** facto - फाक्तो = यथार्थ, वास्तविक।
**व्या०** लोक भाषाओं का नासिक्य चिन्ह लिखित भाषाओं में प्राय: हट जाता है, इससे शब्द में भिन्नता आ जाती है परन्तु अर्थ पूर्ववत रहता है। फ का प में परिवर्तन होने पर यह 'पाक्तो' (पाक्+तओ) हो जाता है, 'तवे' में ही यथार्थ का अनुभव होता है। इसकी दूसरी व्याख्या है फांकने या खाने में ही यथार्थ की अनुभूति होती है 'फाक्ता' (कल्पना) में नहीं।

**कु०** आर् = राख। टिल् = टीलना, कूटना-पीसना, उलीचना। हो/ ह्वो = होना।
**प्रा० पु०** artelho- आर्टिलहो/आर्टिलहो = टखना।
**व्या०** यह प्राचीन पुर्तगीज शब्द उपर्युक्त तीन कुमांउनी शब्दों से मिलकर बना है, टखना अपनी गति (चक्रमण) से विद्युत बल उत्पन्न करता है, इसी को शास्त्रीय अर्थ में राख कहा जाता है। कु० में सफेद राख को 'आर्' कहा जाता है। आड़ू में लगी सफेद राख के कारण ही कु० से इसे 'आरू' कहा जाता है। यहाँ 'टिल' टीलना (उलीचना) है, 'हो' हवा के द्वारा उत्सर्जन होना या क्रिया का सम्पन्न होना है अथवा हो/हवो वह वस्तु है जो कार्य सम्पन्न करे। इस तरह पुरानी पुर्तगीज का 'आर्टील्हो' कुमाउनी के 'आर् टिल् हो' का संयुक्त रूप है।

**कु०** बाढ़रो = बाढ़ के कारण उत्पन्न कीच, मिट्टी आदि।
**पु०** barro - बार्रो = कीचड़, मिट्टी।
**व्यु०** (i) बाढ़ + रओ = बाढ़ द्वारा रखा हुआ।
(ii) भार्रो/भर्रो = जो भराव के कारण बना या जमा हो अथवा जो खाली स्थान भर देता है। पुर्तगीज bar (बाढ़) + ro (रओ)।

कु० गुर्र/गुएर्रा = कसाव देना, गांठ लगाना, कुश्ती लड़ना।
पु० guerra - गुएर्रा/ग्वेर्रा = युद्ध।
व्या० गुर्रा लगाना, पत्थर आदि ग्वेराना (गिराना), मल्ल युद्ध (कुश्ती), गांठ (अवरोध) लगाना युद्ध के ही अनेक प्रकार हैं।

कु० कास् = कास नामक घास।
पु० casa - काजा/कासा = घर।
व्या० कास् नामक घास से झोपड़ी बनती है, पुराणों में काँच के महलों की चर्चा होती है यह कास् ही शोधित होकर काचा/काँचा (casa का स, ज या च में परिवर्तित होकर) बन जाता है। जहाँ काम-काज सम्पन्न होते हैं वह भी काजा (घर) है।

कु० गुवार, ग्वार = घीकुवार; दार = पौधा या वृक्ष।
पु० guardar - ग्वार्दार/गुआरदार = रक्षक।
व्या० शरीर में ग्वार पाठा या गुवार के पौधे (दार) का गाढ़ा लेपन ही रक्षा कवच होता है। इसी अर्थ में इसे 'रक्षक' कहा गया है। शरीर में इसका नाम लार है।

कु० पए = बटना (रस्सी), दबाव देना। दरा = दलना या दलने वाला या दलनी।
पु० pedra - पेड्रा/पेद्रा/पए दरा = पत्थर।
व्यु०/व्या० जिस वस्तु के दबाव से दलन या पीसने की क्रिया संपन्न हो वह पेड्रा है अथवा पीटरा (कु० हि० पीटना) या पटरा है। शरीर में पत्थर और पटरे का कार्य समान होता है। पए (= बटना, बनाना) + दरा (दलना) = पेड्रा। इसकी यांत्रिकी है— कपड़े में गीला चावल रख कर उसे ऐंठने से चावल छनकर बाहर निकल आता है। ऐंठने की क्रिया 'पए' है + तथा दबाव ही दलन (दरा) है। यहाँ पर कपड़ा ही 'पत्थर' का कार्य (पीसना) करता है।

कु० दी, दे = देना; वगार = जुगाली।
पु० devagar - डी वगार/देवगार/दीवगार = धीरे-धीरे।
व्या० पशु की जुगाली क्रिया धीरे-धीरे होती है, कु० में इसे 'वगार' कहा जाता है। अत: पु० में 'देवगार' का अर्थ 'धीरे-धीरे' लगाया गया है।

कु० भुओ/भुनो = भूना हुआ, भीनी गन्ध युक्त।
पु० buo- बोओ/भुओ/पोओ= अच्छा। व्यु० बूओ = बू (= गन्ध) + ओ = आना या होना।
व्या० बू = भू = गन्ध, पुराणों में पृथ्वी का गुण गन्ध है। सौंधी या भीनी गन्ध अच्छी लगती है। भूनने से भी गन्ध आती है तथा भुनी (परिपक्व) वस्तु स्वादिष्ट होती है। 'बूओ' प्राचीन पुर्तगीज शब्द है।

कु० मयाओ = मै (मइ) दिया हुआ खेत, मै (मइ) द्वारा निकाला गया कूड़ा, झाड़

झंखाड़।

पु० mao - माओ/मयाओ = बुरा, गन्दा, मयाया हुआ कूड़ा-कर्कट।

व्या० जैसे कंघा करने से सिर से गंदगी निकलती है वैसे ही 'मै' (मइ) नामक यंत्र से खेत से झाड़-झंखाड़ निकलता है, इसे मयाओ = मयाया हुआ अथवा मयाने से निकाला कूड़ा कहा जाता है, जो व्यर्थ, गंदा या अनुपयोगी होता है। शरीर में रासायनिक क्रिया ही 'मै' या मयाने का कार्य करती है; इससे बने द्रव्य को 'विकार' या मल भी कहा जाता है। यह शरीर के उस अंग के लिये अनुपयोगी होता है। इसे अंग विशेष से उत्पन्न गंदगी, या कूड़ा कर्कट कहा जाता है।

कु० मोयन/मओ इओ = आटे को मुलायम करने हेतु मोयन देना/आटे को या रायते को फेटना, मसलना (मवाना)।

पु० moio मोईयो (ओ) = चक्की।

व्यु० मओइयो, मवइयो = जो पीसने आदि की क्रिया करे। कु० मओ इओ और पुर्तगीज मोइओ की क्रिया समान है। मोओ या मवाने की जो क्रिया करे वही चक्की या मिल है।

कु० मुँदु/मुँदो/मुँदड़ो = गोल छल्ला, गोल घेरा, मुद्रिका, मुँदरी।

पु० mundo/mudu - मुँदु/मूँदू = संसार। कु० मुँदु, मुँदड़ो (सं० मुद्रिका) ही गोल चक्र है। संसार उसी की तरह घूमता रहता है अथवा यह चक्र ही सबका चालन करता है।

कु० तीर पार = किनारे के पार, किनारे के पार जाना।

पु० partir - पारतिर = जाना। व्यु० पार = (दूसरी ओर); तिर (= बहना) = दूसरी ओर जाना अथवा 'पार' करना (जाना)।

कु० पयाओ = पयाया हुआ, निर्मित, बनाया हुआ।

पु० pao - पाओ = रोटी/पाव रोटी। व्या० पयाने (कूटना, पीसना, पकाना आदि) की क्रिया से निष्पन्न वस्तु ही पाओ है। अथवा जिसे 'पाया' = खाया जाय; खाने की क्रिया भी पयाओ (बटना, बुनना आदि) है।

कु० राप = अग्नि से उत्पन्न ताप, अग्नि शिखा, अग्नि जिह्वा।

पु० rapaz - रापाज = सीढ़ी।

व्यु० रापा = ऊष्मा + जऽ = जाना; जिस माध्यम से ऊष्मा जाती है वही सीढ़ी है। चूल्हे में आया उफान भी सीढ़ी ही है अथवा 'राप' स्वयं सीढ़ी है जो अपने साथ अन्य को ले जाती है।

कु० फलोर - चावल या मँडुवा 'फलने' (हल्का कूटने) से उत्पन्न महीन चूर्ण।

पु० flor - फ्लोर/फलोर = फूल।

व्यु० फलूर/फ्लोर = जो फलने की क्रिया से उत्पन्न होता है।

व्या० वृक्ष में स्थूल द्रव्य सूक्ष्म में परिवर्तित होता जाता है। इस फलन क्रिया से अन्त में जो बचता है वही फूल है इसे अति महीन चूर्ण भी कहा जाता है।

कु० फिरि आ देउछ/फिरि आ दिया — पुनः आइयेगा, अर्थात् आप जायें। यह घुमा कर बोलने की प्रथा है। जब कोई जाता है तो परंपरा है कि उसे सीधे 'तुम जाओं' नहीं वरन् 'फिरि आया' {पुनः (फेरा लगाने के बाद) आना} कहा जाता है।
पू० adeus - आदेउस/आ दिएउ छ = गुडबाइ! शुभयात्रा! शुभ गमन! इसकी व्याख्या ऊपर हो गई है।

कु० वगारिन हओ/वगार दिनु = जुगाली या चक्की की वगार (ग्रास) क्रमशः देना।
पू० devagarinho- दीवागारिन्हो/देवागारिन् हवो = थोड़ा-थोड़ा क्रमशः देना।
व्या० चाहे जानवरों की वगार (जुगाली) हो अथवा चक्की की 'वगार' दोनों में क्रमशः थोड़ा-थोड़ा पीसने का द्रव्य दिया जाता है।

---

## कुमाउनी : जर्मन

कु० बौलि = छोटा तालाब, बावड़ी।
पू०उ०ज० wola-वोला/बउला = कुआँ या वोलने (मिश्रण, गूँथने) का गहरा बर्तन।
व्यु० (i) वओल + आ > बहोल + आ = जहाँ पर बहकर (द्रव्य) आये।
(ii) वोला = कु० वोल्नु (= आटा गूंथना) के अर्थ में वह गहरा परात या गहरी थाली है जहाँ पर 'वोलने' की क्रिया होती है।
(iii) बौला/बौलि = छोटा तालाब, या बावड़ी। म०उ०ज० में इसे wole (वोली/वोले) कहा जाता था।
व्या० पुराणों में शरीर के अंगो को ही क्रिया के आधार पर कुआँ, बर्तन, हाथ, तकिया कहा जाता है। महाभारत में यह प्रकरण मिलता है जब ऋषि कहते हैं। हाथ ही मेरे बर्तन हैं, यही तकिया है आदि-आदि।

कु० साल्नु = रायता फेटना; हल, मै (मइ) का निर्माण = योग, संगबद्ध करना।
उ०ज० salida सालिदा— परम आनन्ददायी। म०उ०ज० saelde — सैल दे— सयल दे/साइल दे/ छाइल दे।
व्यु० सय+लई+दा = कु० सय (= मीठी लपसी) लाना या बनाना। सय को भी फेंट कर रुचिकर बनाया जाता है। प्राचीन काल में इसे लपसी और आज हलुवा कहते हैं। सालिदा के ल को र में परिवर्तित करने पर यह 'सारिदा > साड़िदा' (कु० साड़ि दे/साड़नु (जैसे दूध) = फेटना (हि०) बन जाता है। इससे यह गाढ़ा होकर लपसी जैसा हो जाता है। यह लपसी (लोक में रबड़ी या मलाई) परम आनन्ददायी होती है। कु० में 'रायतो साल् या साल्नु' का अर्थ रायते में दही, नमक, मसाला,

राई को फेंटना है, इससे रायते में बहुत अच्छा स्वाद आ जाता है। शरीर में इसे रसायनों का सम्मिश्रण कहते हैं, जो आनन्ददायी होता है।

व्या० शास्त्रों में इसी को योग भी कहा जाता है, हल मै (मइ) के योग से ही अनेक क्रियायें सम्पन्न होती है। रसों और अनेकानेक द्रव्यों का सम्मिश्रण भी योग ही है, योग की महिमा सभी जानते हैं। आयुर्वेद में अनेक जड़ी बूटियों के मिश्रण को योग कहते हैं। रस शास्त्र में 'सालना' मुख्य रूप से रसों में नमक डालने से उत्पन्न क्रिया और उसके प्रभाव का नाम है।

कु० इस्सीन/इस्यूनु = कालिख पोतना, आग देना, आग से जला देना।
ज० essen - इस्सेन/इस्सीन = भोजन करना।
व्या० इस् + झएन, इस् + खीन (खएन)। पुराणों में राख, जलते कोयले खाने की कथाएँ मिलती हैं, शरीर में इस् या इष् आक्सीकृत रसों का नाम है, यही तप्त कोयले भी कहे जाते हैं। इसको ग्रहण करना ही इस्/इष् का खाना अर्थात् भोजन करना है।

कु० फल्नु = ओखली में अनाज के छिलके उतारने की क्रिया। जैसे मडुव फल्नु = मडुवे के छिलने उतारना; जौ के छिलके उतारना।
ज० fliegen - फ्लीगेन = उड़ना।
व्यु० फलइए जएन/ - गएन = फलने (कु० फल्नु) के बाद जाने की क्रिया का नाम फली गऐन या फ्लीगेन (= उड़ना) है। शरीर में रसों का परिपाक (शुद्धिकरण—फल्नु के अर्थ में) श्वास-प्रश्वास के कारण रक्त के वेग से होता है। इसी वेग से फलित छिलके या सत्त्व अन्यत्र को उड़ता है (जैसे प्रश्वास) यही फली गएन या फली जएन है, जिसे जर्मन में फ्लीगेन (उड़ना) कहा गया है।

कु० ग्लौबि, गलबही = गलबहिया डालना, परस्पर गले मिलना।
ज० glaube - ग्लौबे/ग्लौपे/ग्लौबी = विश्वास।
व्यु० ग्लौ = गले मिलना या रसों का परस्पर आलिंगन बद्ध होना ही विश्वास है।

कु० लिपट/लिप्ट = लिपटना, सटना।
ज० liebt - लीब्त/लीप्त (ट) = प्यार करना।
व्यु० (i) लइए (लिए) बट = बटना, रस्सी की तरह लिपटना।
(ii) लीप्त = लीपना = चाटना (पशुओं में) भी प्रेम प्रदर्शन का ढंग है।

कु० भोट = लकड़ी या पत्थर का बड़ा टुकड़ा।
ज० Boot - ब्वौट/बूट/बोट (भोट)/पोत = नाव।
व्या० लकड़ी के बड़े लट्ठे को पानी में डाल दें तो वह नाव बन जाती है।

कु० सेत = पाल (फलों को पाल डालने की क्रिया)। जट = जटा, थक्का या ढेला।
ज० setzte - झेट्स्टे/सेतजटे = परिपाक हो जाना, परिपक्व हो जाना।

**व्यु०** जर्मन सेत = कु० सेत ही है, तथा 'जटे' या 'जटा' का अर्थ यहाँ पर परस्पर संगबद्ध होने या ठोस रूप ग्रहण करने के अर्थ का द्योतक है। अं० में इसे 'सेट' जैसे सीमेन्ट का सेट हो जाने के अर्थ में लिया जाता है। यदि दूध को 'सेत' डालें तो वह जटा अर्थात् थक्के के रूप में 'सेट' हो जाता है। कु० में इसे 'सेत डाल्नु या सेत राखनु' (सेत डालना) और हिन्दी में पाल डालना कहा जाता है।

**कु०** आब् ढन्कनु = अब बढ़ना है, अब चलना है, अब स्थान रिक्त करना है, स्थान से अलग (लुढ़कना) होना है।

**ज०** abdanken - अपडांकेन/अबडांगीन/अबढन्केन= पद छोड़ना, रिटायर होना।

**व्या०** कुमाउनी और जर्मन आब्, अब् (आप) यथार्थ में ऊष्मा युक्त सं० आप्/आब् है, जो ऊष्मित होने से अपने स्थान से ढन्कते (लुढ़कते) हुए आगे बढ़ता है। अथवा अपने वर्तमान स्थान से कु० डांगी = ठांगी = शाखा में चले जाते हैं, अथवा आब् दन्केन = जल छनछनाते (लुढ़कते) हुए अन्यत्र चला जाता है।

**कु०** आब् फांगेन/आब् फांगीन = अब शाखाओं में जाना और रहना।

**ज०** abfangen - आप्फांगन/आप्फांगीन (गेन)/आब् फांगेन = प्राप्त करना, रखना, पकड़ना।

**व्या०** फांग्, फांगा, कु० में शाखाओं का नाम है। जब वृक्ष शाखायें फैलाता है तो कहा जाता है— रुख आब् फांगीन्नौछ (वृक्ष अब शाखाएँ फैला रहा है)। इसका वैज्ञानिक या शाब्दिक अर्थ है वृक्ष का ऊष्म जल शाखाओं की ओर नावन (बह) कर रहा है या 'फांग' में रखा जा रहा है।

**कु०** आब् फाँस्सीन/- फाच्चीन/- पास्सीन = आब् (फिर या आगे) फांसना अर्थात् नये बंधनो का निर्माण/अब (फिर) फांची (बंडल, गठरी) बनाना/अब पाश में जकड़ना। ये शब्द किसी निर्माण की ओर संकेत करते हैं।

**ज०** abfassen - आब् फासेन/आप् फासीन = गठन या निर्माण, संरचना।

**व्या०** कुमांउनी शब्दों से जर्मन आब् फाच्चेन/आब् फास्सेन आदि की व्युत्पत्ति हो जाती हैं फ का प तथा स का च में परिवर्तन अनेक उच्चारणों और शब्दों का निर्माण कर देते हैं। जर्मन में ss 'स्स' का उच्चारण केवल 'स' किया गया है परन्तु भारतीय प्रवृत्ति 'स' और 'स्स' दोनों उच्चारणों के अनुकूल है। कु० में पासेन/पाँसने दोनों (नासिक्य रहित/सहित) प्रयुक्त होते हैं।

**कु०** (आब्) फ्यूर्न/फ्यूर/फ्यूरनु/फ्यूरीनु = क्रोध से फूंफकारना, जैसे नाग, बिल्ली का फुफकारना।

**ज०** abfeuern - अप्फ्यूर्न/अप्फोइर्न/अप्फूइर्न/आब् फेउइर्न = अग्निबाण, राकेट को छोड़ना।

**व्या०** आब (आभ्) जब फुंफकारती है तो उसके साथ द्रव आदि सभी कुछ

गतिशील हो जाता है। नाग आदि का क्रोध ही अग्नि का एक प्रकार है जो उसके फन को राकेट की तरह ही फेंकता है। कु० में आब् शब्द सदा नहीं लगता है यह केवल प्रक्रिया के अगले चरण के लिये लगाया जाता है, बिना ('आब्') के भी फ्यूर्न आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं।

कु० गुज, गुज-गुज/गुजीनु = गिजगिजा/गुथा हुआ (जैसे आटा)।
ज० abguss - आप्गुस/आप्गुज/आब्गुज = चिपचिपा द्रव्य या गारा बनाना।
व्या० आभ् जब आटे आदि के घोल को गुज-गुजाती है तो वह गाढ़ा लेप हो जाता है, बाद में यह अधिक कठोर हो जाता है, तब इसे कु०, भोजपुरी या हिन्दी में गोजी (जो गुजगुजा कर परिपक्व हो) कहा जाता है। जर्मन 'आब्गुज' द्रव का गाढ़ा होने के अर्थ में लिया गया है। कु० धुल् गुजी गो छ = आटा गुंथ गया है।

कु० हांग्/हांगीनु = छोटी-छोटी शाखाएँ/शाखाओं का फैलाव व बढ़ाव।
ज० abhangen - आप्हैंगेन/आप्हांगेन = ऊपर जाना, उड़ना।
व्या० आब् या आप् को पूर्ववत लिया जाय। हांगेन या हैंगन की व्यु० कुमाउंनी शब्दों में निहित प्रक्रिया के अनुरूप है।

कु० हूल/हूलनु = हूलना, सभी वस्तुओं को एकाएक गिरा देना, फेंकना, आगे बढ़ाना आदि। हूल्त/हूलद = हूलता है/हूल देता है।
ज० abhold - अप्होल्त/आप्हूल्त = विमुखता, विपरीत।
व्या० हाथी आदि को हूलना विपरीत दिशा में ही होता है, विज्ञान में यह हूलना अनेक प्रकार से होता है जैसे चप्पू से नाव हूलना, अग्नि के विपरीत बल से राकेट को हूलना आदि।

कु० लाद्, लादनु = लादना, रखना, स्थापित करना।
ज० abladen - अब्लादेन/अप्लादन/आप्लादेन = एकत्र करना, भार उतारना।
व्या० (i) आब्/आप् + लादीन = लादी (पेट) में भरना (अन्न आदि) (ii) अब ला + देन = आप्/आब् को लाकर देना या उतारना।

कु० लच्छीनु/लस्सीनु = एकत्र होना, संघबद्ध होना, गाढ़ा होना।
ज० ablassen - आप्लासेन/आब् (आभ्) लास्सेन = अलग होना, पृथक्करण, पूर्व अवस्था के विपरीत।
व्या० आब् का अथवा आभ द्वारा लच्छे बनाना, द्रव रूप से ठोस बनने की क्रिया अथवा लासा (चिपचिपा) बनना जैसे दही का गाढ़ा बनना, दही का पानी अलग होकर लच्छा बनना, अथवा रवाकंरण।

कु० (आब्) लेइ फेर्नु = लेई को फेरना या लेपना, लिये हुए को फेरना (लौटाना)।
ज० abliefern - आप्लीफेर्न/आप्लिएफेर्न = देना, भेजना।
व्या० 'लेना' अर्थ मूल रूप में 'लेई' से बना है, लेई वह पदार्थ है जो सब में

चिपक जाती है अथवा इसे इस प्रकार देखें कि वह सबको अपने में लेकर फिसलती हुई चलती है, चाहे यह आटे की लेई हो या काई (शैवाल) की। अत: लेई से लेइ, या लेना अर्थ बनता है। 'फेर्नु' भी एक क्रिया है जो 'पेर्नु' (पेरना) के विपरीत है। कपड़े को निचोड़ना पेरने की क्रिया है, उसी से जल को फैला देना 'फेर्नु' या फैलाना या देना है। कु० में 'आब्' आवश्यकतानुसार लगता है कुमांउनी में आब् का अर्थ जल या सं० आब्/आप् नहीं वरन् जल (आप्) का विकास क्रम है, इसका अर्थ 'अब' लिया गया है, जैसे अब (आब्) द्रव गर्म होता है, आब् खौलता है, आब् लेई की तरह होता है जबकि जर्मन में आब् का अर्थ सं० की तरह ऊष्ण जल या मिश्रित द्रव के अर्थ में लिया गया है।

**कु०** (आब्) माच्/माचेन/माचिनु = लकड़ी का बना मांच (सं०, हि० मंच)/माच में रखने की क्रिया, एकत्र करना, मंच में स्थापित करना/मितली आना।
**ज०** abmachen - आप्माखेन/आब् माचेन = अलगाव, स्थापित करना, रखना, सजाकर रखना।
**व्या०** कुमांऊ का 'माँच' द्विअर्थक है एक तो 'मंच' अर्थ देता है तथा दूसरा 'मितली' की स्थिति का नाम भी माँच है। यह जर्मन अर्थ अलगाव, पृथक्करण का समानार्थक है। शरीर में 'माँच' (मंच) पर रखने की क्रिया 'माँच' (मितली, उल्टी, कै) के संचारी भाव द्वारा होती है अत: 'माँच' के दोनों अर्थ कुमांउनी एवं जर्मन में लिये गये हैं। यह आवश्यक नहीं है कि लिखित रूप में 'माच' के मा को नासिक्य लिखा ही जाय क्योंकि 'म' नासिक्य वर्ग का ही सदस्य है। कुछ इसे 'माछेन' भी कहते हैं इसका सम्बन्ध मछली की गन्ध से है, जो मितली उत्पन्न करती है। अथवा 'माखेन' जब तत्त्व (मक्खन) बनने लगता है वह अलग होकर तैरने लगता है, जो जर्मन 'अलगाव' अर्थ देता है।

**कु०** (आब्) रौलि/रौलीनु = छोटा पर्वतीय जल स्रोत जो ऊँचाई से नीचे को लुढ़कता (बहता) है/लुढ़कना या बहना।
**ज०** abrollen - आप् रोलेन/आभ् रोलेन (रोलीन) = गुण्डी का खुलना, फैलना, लुढ़कना।
**व्या०** कुमाउनी रौलि/रौलीनु के आधार पर ही अं० का रौल (लपेटना) बना है। जर्मन 'रौलेन' का अर्थ है रौल (एकत्रित अं० रोल = गठरी, गुण्डी) का बहना या लुढ़कना। झील में रुका जल 'रौल' (कु०) या अं० 'रोल' है जब यह कु० रौलि (ढालन भूमि) या घाटी में बहता है तो लगता है जैसे रोल (झील) का पानी रौलीन (ढाल में लुढ़कना, अं० अनरोल) करता हुआ जा रहा है। कु० में 'रौल' का एक अन्य अर्थ भी है, जहाँ रहा जाता है अर्थात् स्रोत स्थल या संग्रह स्थल। जहाँ जल एकत्र होता है, उससे अंग्रेजी में 'रोल' तथा जहाँ से जल बहता है उससे जर्मन '(आप्/आब्) रौलीन' शब्द बने हैं। कु० में एक ही शब्द 'रौल', 'रौलि' से अनेक

अर्थ व्युत्पन्न होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कु० 'रौल' शब्द मूल है जिससे अं० जर्मन आदि शाखाएँ (ऐंग्लों-सेक्सन) बनी हैं।

कु० टड्यून = दूर करना, भगाना, अलग करना।
ज० abtrennen - आप्ट्रैनेन/आप् तरेन्नेन = अलग करना, अलग होना।
व्या० उक्त कु० तथा जर्मन शब्द तैरने या तैराने से व्युत्पन्न हैं। कु० में 'र' 'ड़' में परिवर्तित है। जर्मन आब् या आप् के बिना भी कु० 'टड्यून' से बांछित अर्थ निकल जाता है। 'टड्यून' तर्यून या तैर्यून = तैराना से व्युत्पन्न है, तैराने का अर्थ ही है दूर करना, दूर हटाना या अलग करना। जर्मन 'तरेन्नेन' के समानान्तर कु० शब्द है तरौंन्यान (= तराने की क्रिया करना)।

कु० अल्ल/आल्ल = एक घास विशेष।
ज० All - आल = विश्व, आकाश, सम्पूर्ण, प्रत्येक, कोई भी।
व्या० अल्ल की व्या० के लिये देखें पृ० 52 (अं० all)। यहाँ पर वाह्य आकाश से ही अर्थ किया गया है जो अल्ल की तरह सर्वत्र व्याप्त है। जिसमें सभी सम्मिलित है। इस All (आल) को हम 'अल्ल या आल्ल' उच्चरित करें तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है, अल्ल के रस (शरीर ब्रह्माण्ड के सन्दर्भ में लार) में जिस प्रकार सभी की गति होती है उसी प्रकार यह 'आल' हैं जिसमें सभी एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

कु० अल्लेइ = अल्ल के रस से अथवा शाखाओं से लीपना, अथवा अल्ल के पौधों का उगना, अल्ल को बिछा (फैला) देना।
ज० Allee - अले(ई)/आले (ई)/आल्लेई = गली, मार्ग ।
व्या० शरीर में सभी पथ अल्ल के रस को गाढ़ा कर लेपन करने से बनते हैं जिसे हम श्लेष्म कहते हैं।

कु० औंस लेसनु = भाप से सिंकाई करना, गाढ़े द्रव का लेपन करना।
ज० auslassen - औसलासेन/औस लच्चेन = भाप निकालना, पिघलाना (मक्खन), उल्टी करना।
व्या० औंस जिसे जर्मन में औस कहा गया है एक ही शब्द हैं। जर्मन लास्सेन या लच्चेन में (लचना, पिघलना, दूर करना, उल्टी करना) सभी क्रियायें औंस या भाप से सम्पन्न होती हैं।

कु० बगाजए = जो बहाकर ले जाए या बहते हुए जाय।
बगागए = जो बहाव के साथ चला गया।
बागा गए/जए = बाघ का चला जाना या बाघ के पास जाना।
ज० Bagage - बागाजे/बगाजे/बैगाजे/बगागी = बोरिया बिस्तर, सामान।
व्या० इसमें आये शब्दों के अतिरिक्त अं० का bag (बैग) तथा baggage (बैगेज

= सामान) कु० बाग = बाघ से व्युत्पन्न है। आदि काल में 'बाग' मुँह में रखकर पशु और मनुष्यों को उठा ले जाता था अत: यह 'बाग' ही अं० बैग = थैला, झोला बन गया। 'बाग' लार बनाता है इसी में लिपट कर सभी अन्न बहते हुए पेट में पहुँचते हैं अत: 'बाग' से ही कु० बगनु (बहना), बगूनु (बहाना), बगा (बहाना) शब्द बने हैं। यही बाग (= राल) सभी सामानों (अन्न) को लपेट कर बाँध लेती है अत: इसी से अं० का बग्घाज (स)/ बागाज (बैगेज) तथा जर्मन बागाजे/बैगाजे शब्द व्युत्पन्न हैं।

कु० बौरानि/बौराणि = किसान की पत्नी या कोई भी स्त्री जो बदले में एक दूसरे के खेत में कार्य करती हैं।
ज० Bauerin - बोइरिन/बोयेरिन/बौरीन = किसान के पत्नी।

कु० बायुनु भयो/बैनु भयो/बोएन भयो = जोतने की क्रिया का पूरा होना।
ज० bebauen - बेबोएन/बिबौइन = कृषि निर्माण कार्य, जोतना, बोना।
व्या० जर्मन बे (be) का 'ब' कु० में 'भ' है। 'बोएन' शब्द कु० में भी यथावत है, जैसे धान बोएन छन, खेत बोएइन भयो। जर्मन में be (भए) पहले है, कु० में यह (भए/भयो) दोनों ओर लग सकता है।

कु० बैट्ठी = जिसमें बैठा जाय।
बिटी, बिट्टी = गट्ठर, एकत्रित वस्तुएँ जो एक साथ बंधी हों।
ज० Butte - ब्यटे/बिट्टे/ब्यट्टी/ब्यट्ठी = टब, बर्तन।
व्या० जर्मन 'बिटे, बैट्ठी' में कु० के उपर्युक्त दोनों शब्दों के अर्थ समाहित हैं। बर्तन जिसमें बैठा जाय अथवा वह स्थान जहाँ गट्ठर (संग्रह) रखे जायं।

कु० भुटेर/भुटीर = जिससे सब्जी भूनी जाय, छौंकी जाय।
ज० Butter - बुटेर/भुटेर/भुत्तेर/भुट्टेर = मक्खन।
व्या० उक्त तुलना लोक क्रिया पर आधारित है। भौतिक या वैज्ञानिक व्याख्या कुछ भिन्न है। कु० में भुत्/भुत्ता गेहूं आदि के अंकुर का नाम है। दही में जो अंकुरण होता है उसमें भी बुत या भुत जैसे सूच्याकार अंकुर बनते हैं। इसमें मक्खन की प्रधानता होती है। अत: यह अंकुरण भी बीज या दही में निहित ऊष्मा द्वारा 'भुटनु' (भूनने) की ही एक क्रिया है।

कु० दयामई/डामे, डामई = जो दया करती है। जो डामती (अग्नि से दागना) है।
ज० Dame - दामे = महिला, स्त्री, शतरंज की रानी।
व्या० पुराणों में स्त्री, देवी का रूप कही गई है। जो देती है वह दया मई (Da+me) है। पुन: चक्रीय स्थिति में वह काली या दुर्गा का रूप भी कही गई है। जो अनावश्यक द्रव्यों को डामती या भस्म करती रहती है। संस्कृत में इसे 'दामिनी' (विद्युत) कहा गया है।

**कु०** डालीनु/डारीनु = डाल/डार (शाखाओं) में जाना।
**ज०** darin - डारिन/डारीन = उसमें या वहाँ पर।
**व्या०** वृक्ष का रस या तो जड़ को ही मोटा बनाता है या डाल या शाखाओं में जाता है इस जाने की क्रिया और संग्रहण का नाम डारिन (ज०); डालीनु, डारिनु (कु०) है।

**कु०** देउत छ लानु = देवताओं को लाना है।
**ज०** deutschland- द्युइतश् लान्त/द्योतछ लान्त/दोइत्श लान्त = जर्मन देश।
**व्या०** देवत, देवता ही जर्मन Deut (देउत) है। इसके उच्चारण में भिन्नता लाने की दृष्टि से इसे 'दोइत' बना दिया गया है। ज० लान्त/लांत का अर्थ लाना है। पुराणों के माध्यम से इसकी व्याख्या की जा सकती है, पुराणों के अनुसार पृथ्वी को एक राक्षस जल में ले गया था तथा देवों के नायक उसे लाये। यह लाँत या लान्त ही 'लैण्ड' बन गया। इसकी दूसरी कथा भी है जब दिवोदास ने काशी से देवताओं को निकाल दिया था, तब देवतओं को काशी में लाने (बसाने) का उपक्रम किया गया था शिवपुराण में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। पुराण यह भी बताते है कि देवता भिन्न-भिन्न रूपों में अवतार लेते हैं। इसका अर्थ है कि 'देव' वह शक्ति है जो रसों, रसायनों के स्थूल रूप में संग्रहीत है। यदि पुराण कथाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो हम पाते हैं कि प्रकृति के मूल तत्व ही देवताओं के शरीर हैं। इन्हीं से पृथ्वी स्थान या देश बनता है, इस तरह दोइत्श लान्त (लैण्ड) का अर्थ देवताओं द्वारा प्रदत्त या उत्पन्न भूमि का नाम जर्मनी है। जर्मनी का यह पौराणिक नाम है।
**विशेष :–** भारतीय भी स्वयं को देव भाषा एवं देव भूमि से सम्बन्धित मानते हैं। जर्मनी की उक्त व्याख्या से उन्हें कुछ ठेस पहुँच सकती है। भाषाविद और इतिहास विद् इससे निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जर्मनी ही प्राचीन देव-भूमि रही है वहाँ से ही सभी देवता भारत आये थे अथवा लाये गये थे आदि-आदि। यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि सभी भाषाऐं स्वयं को देव भाषा तथा अपनी भूमि को देव भूमि कहती हैं। उनके शब्द भिन्न-भिन्न हैं परन्तु व्युत्पत्ति करने से उनका अर्थ भी समान रूप से 'देव' से सम्बन्धित होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि भाषा का आधार लौकिक क्रियायें न होकर वैदिक विकास क्रम की आन्तरिक जैविक क्रियायें हैं। जिनकी छाया हम बाह्य जगत में देखते हैं।

---

## कुमाउनी : डच

डच भाषा नीदरलैण्ड (हालैण्ड) तथा बेल्जियम में बोली जाती है। इसके

भीतर फ्लेमिश तथा फ्रीशियन भाषाएँ भी आ जाती हैं।

कु० बाटनु = बटना, पई देना (जैसे रस्सी बटना।
डच- Water - वातीर/वाटेर = जल।
व्यु० वाट् >बाट् + ईर = जो द्रव्यों को घुलाकर ईरण उत्पन्न करता है। यहाँ पर ईरण या ईर का अर्थ उष्मा के साथ रासायनिक संपृक्तीकरण है जैसे खमीर की क्रिया जल के कारण ही होती है। इसी को शरीर में द्रव्यों का 'बटना' कहा जाता है। यह बटा हुआ जल जिस ओर बहता है वही रास्ता है इसी अर्थ में कु० और बंगला में पथ को बाट्/बाटा/बाटो कहा जाता है।
व्या० पुराणों में इन्हीं बटित, गुणित, परिपक्व जल को पथ कहा गया इसी आधार पर यह शाश्वत सिद्धान्त बना है– महाजनो येन गत: स.पन्था:। यह सार्वभौम सिद्धान्त विज्ञान की तरह है जहाँ-जहाँ जल स्त्रोत, नदी, तालाब, झील आदि होते हैं वहीं सभ्यता का विकास हुआ है। वर्तमान में इतिहास जिन्हें 'महाजन' कहता है उनमें निन्यानब्वे प्रतिशत छद्मवेषी ही हैं। यही कारण है कि मानव को जिस पंथ की तलाश है उसकी पूर्ति इन छद्म महाजनों के रचित आदर्शों से नहीं हो रही है।

कु० करउइस्/करुइष् = कालिख, भस्म, राख बनाना; आक्सीकरण करना।
डच- kruis - क्रूइस/कराइश्/करु इष्/करउ इस् = क्रास, स्वस्तिक।
व्यु० करु/करउ (= करना) + इस्/इष् (= द्रव्य का चूर्ण कर उसका आक्सीकृत स्वरूप ही इस् या इष् है, पुराणों में इसे भस्म, राख या कज्जल कहा गया है।)
व्या० शरीर में अन्न का चूर्णीकरण और आक्सीकरण पूरक और रेचक (श्वास, प्रश्वास) क्रिया से होता है। इसी को क्रास, स्वस्तिक या मथानी कहा जाता है।

कु० हार = माला, हार।
डच- hard - हार्त = कठोर, ठोस।
व्यु० ड का उच्चारण त किया जाता है। (i) हार्त = हार पहिनना, पहिनाना। (ii) हर्त = नमी को हरण करना। इन दो क्रियाओं से हार/हार्त = hard = कठोर, ठोस रूप में परिवर्तित हो जाता है।
व्या० समुद्र के किनारे एक लहर आती है वह कीच आदि का हार तटीय भूमि को पहना जाती है, उसके जाने के बाद धूप (ऊष्मा) से यह सूख कर कठोर हो जाती है यह क्रम बार-बार दुहराया जाता है। अत: हार्त एवं हर्त (हार पहनाना और हरण) की क्रिया से हार में स्थिरता और कठोरता आ जाती है।

कु० रख/राखनु = रखना, जोड़ना।
डच - rekken - रेकेन/रयिकिन = सीना, जोड़ना।

व्यु० (i) रयिक् + कएन = रयि (गति, घर्षण) करना। (ii) रक्केन > रक्खेन = रखना।
व्या० शरीर में लोक की तरह सिलने के लिए सुई नहीं होती है। वहाँ द्रव्य वेग से घूमते हैं तथा दीवालों से चिपकते जाते हैं। यही सीना या सिलाई कही जाती है। किसी द्रव्य को कहीं पर रख दिया जाता है तो भी वह चिपक या सिल जाता है जैसे लार।

कु० ताड़नु/तारनु = दूर करना, बाहर को धकेलना, हांकना, पार कराना।
डच- trekken - तरेकिन/त्रेकिन/त्रेकेन = बाहर करना।
व्यु० (i) त्रेक् कएन = तराने की क्रिया का किया जाना। (ii) टड़े कएन = दूर करना।
व्या० तरे का उच्चारण टड़े भी है। कु० में गोरू ताड़ दे, टड़े दे = गाय को भगा दो या दूर (टड़े) कर दे। भोजपुरी में भी टड़े का अर्थ 'दूर' है जैसे— टड़िया= गांव का दूरस्थ कोना।

कु० बड़, बड़ो/बढ़ीत = बढ़ा हुआ, फैला हुआ/बड़ा, विस्तृत।
डच- breed - ब्रीत/ब्रीड/बढ़ीत = बड़ा, फैला हुआ, विस्तृत।
व्यु० (i) बढ़ीत = बढ़ा हुआ। (ii) भरीत = भरा हुआ।
व्या० दोनों व्युत्पत्तियों का अर्थ विस्तृत या फैला हुआ, भरा-पूरा होता है।

कु० हिट्टि, हिटनु = चलना।
डच- hitte - हिट्टि/हिटे/हिती = ऊष्मा।
व्यु० हइत् ते/हयत्दे/हित्ते = हितकारी, गतिकारी।
व्या० पुराणों ने सूर्य की ऊष्मा को सात अश्वों में विभाजित किया है। अश्व गति का प्रतीक है। अत: जो अश्व (गति) दे—हय त्ते (दे) — वही हित्ती/हिती है। हय (= अश्व) हितों की पूर्ति करता है अत: इसका अर्थ हित साधक भी है। पुराण बताते हैं कि शरीर में ऊष्मा अश् धातु से व्युत्पन्न द्रव्यों से मिलती। इसी आधार पर अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। विज्ञान के स्तर पर अमोनियम क्लोराइड और इसके यौगिकों का नाम 'अश्व' है। जो शरीर ब्रह्माण्ड में सूर्य (ऊष्मा, प्रकाश) के सात अश्वों का कार्य करते हैं। यथार्थ में ऊष्मा ही चलती है अत: कु० में हित्ती/हिट्टी का अर्थ चलना बन गया है।

---

## कुमाउनी : प्राचीन नार्स

प्राचीन नार्स आइसलैण्ड एवं नार्वे में बोली जाती थी। डैनिश, नार्वेजियन और स्वीडिश भाषायें इसी नार्स भाषा से विकसित हैं।
कु० फिजाल/फिनाल = फैलाना, बिछाना, विस्तार देना।

**प्रा०ना०** finnari - फिनारी/फिन्नारी = खोजकर्त्ता।

**व्यु०** फिन् = कु० फिन्/ फिनु = चटाई। नयारी = बहाना या नावन करना। फिन का अर्थ चटाई (फिन्) की तरह फैलाना (नयारी) और पुन: वापिस ले लेना है।

**व्या०** पुराणों में ब्याध द्वारा पाश फैला कर या अन्य तरीकों से वांछित की खोज करने की कथाएं मिलती हैं। उदाहरण के लिये कुत्ता मूत्र में गन्ध विशेष को प्रसारित (फिनालते) हुए मार्ग विशेष की खोज करता है। इन्द्रियों की शक्तियों के विस्तार (फिनालर = फिन की तरह शक्तियों का फैलाना) से ही खोज की जाती है, जो फिनालता या फिनारता है वही 'फिनारी' है।

**कु०** ल्वस/लस = चिपचिपा, ढीला द्रव, जो सरलता से बह सके।

**प्रा०ना०** laus - लौस/लैउस = ढीला, गीला।

**व्यु०** लाउस/लाउछ = जो दूसरों को लाता है (= लार)।

---

## कुमाउनी : नार्वेजियन

**कु०** चिम्मट, चिमड़, जिमड़, जिम्मड़, जिमड़ो = कठिनता से कटने/घुलने वाला (भो०पु०, हिन्दी-चिम्मट)।

**नार्वेजियन**-gemytt-गीमीट/गिम्यट, गिम्यट्ट = चिम्मट, स्वभाव (मृदु या कठोर)।

**व्यु०** गी = घी, मिट्ट = मिट्टी।

**व्या०** शरीर में स्थित द्रव (बाढ़ का मटमैला पानी भी कहा जाता है) में स्नेह (घी) पड़ने और उसे फेंटने से गाढ़ा, कठोर लस बन जाता है इसी का नाम 'गिमिट' है। ग, का विकल्प च भी है अत: कुमाऊंनी हिन्दी आदि में चिमड़, चिम्मट कहा जाता है। परन्तु अब 'चिम्मट' की व्युत्पत्ति परिवर्तित हो जाती है। अब व्युत्पत्ति हो जाती है चइ = चिड़िया + मट् = मिट्टी = चिड़िया द्वारा लाई गई मिट्टी। अबाबील नामक चिड़िया जिसे कु० में 'गौताली' कहा जाता है मिट्टी का घोंसला बनाती है। उसमें कठोरता लाने के लिये तैलीय या घी का अंश मिला होता है। जब नार्वेजियन के 'मिट्ट' का 'मयट्ट' उच्चारण करेंगे तो अर्थ में थोड़ा सा परिवर्तन आ जाता है तब 'मै' या 'मयट' द्वारा परिष्कृत की गई मिट्टी होता है। भारतीय यज्ञ परंपरा में प्रयोग हेतु इस मिट्टी को लाने का विधान है। यह तालाब की मिट्टी और विकास क्रम के साथ-साथ चूहे के बिल से निकली मिट्टी होती है। इस तरह मानव संस्कृति के विकास को मनीषियों ने यज्ञ परंपरा में भी पिरोया है।

**कु०** ताक, ताखा = आला, दीवाल में या अन्यत्र सामान रखने की व्यवस्था।

**नार्वेजियन** tak - ता:क = छत।

**व्या०** ताक या ताग् शरीर में ताक या ताग् (सिलना) का एक ही अर्थ है। यहाँ छत उल्टी होती है। छत के ऊपर भी सामान रखा जाता है। तथा छत की सीलिंग के नीचे भी प्लास्टर आदि के रूप में समान चिपकाया जाता है अत: यह ताक या ताखा का एक प्रकार है।

**कु०** सटनु = सटना, निकट आना, चिपकना।
**नार्वेजियन**- sten, stein - स्टेन/सटेन, स्टेइन/सटेइन = पत्थर।
**व्यु०** सटेन/सटीन, सटेइन/सटैन = जो परस्पर सट गया हो।
**व्या०** चावल के मांड़ को चूल्हे को गर्म करने से वह गाढ़ा होता जाता है, इसे सटना या निकट आना कहा जाता है, जब अत्यधिक गाढ़ा हो जाता है तो उसमें वहन (गति) शक्ति समाप्त हो जाती है अत: उसमें पत्थर की तरह स्थिरता के गुण आ जाते हैं। इसी अर्थ में जो वस्तु सट कर ठोस, स्थिर हो वह पत्थर कही जाती है।

**कु०** ताप = आंच, गर्मी, ऊष्मा।
**नार्वेजियन** tape/tapa तापे/तापा = ढीला, लचीला (loose)।
**व्यु०** तऽ (ऊष्मा, ताव) + पए = बटना, हलचल उत्पन्न करना, लचीलेपन का आना।
**व्या०** चीनी का गाढ़ा घोल लें, उसे गर्भ करें तो उसमें लचीलापन या गतिशीलता आ जाती है, ठोस गीली लकड़ी को गर्म कर लचा देते हैं। इस क्रिया से तापे या तापा का अर्थ लचीला (loose) या ढीला होता है।

**कु०** काछनु = काछना; धोना, साफ करना, फेंकना।
**नार्वेजियन** kaste/kasta - कास्ते, कास्ता (टा)/काछते, काछता = फेंकना।
**व्यु०** कुमाउनी के 'छ' का स्थान स ने ले लिया है। व्याकरण के नियमों में छ, स में या स, छ में परिवर्तित हो जाते हैं। कास + ते > काछ ते/कास + ता > काछता = बाहर करना या फेंकना।

**कु०** कान् = कन्धा।
**नार्वेजियन** kan- कान/कान्/कयान = सकना (can)।
**व्यु०** कयान् = किया हुआ, कयन् = किया हुआ।
**व्या०** कन्धा (कु० कान्) शक्ति, बल तथा क्रिया का प्रतीक है। कन्धा एक बार में जितना उठा सकता है या दबाव से बड़े कणों को महीन बना सकता है, उसकी इसी क्रिया की क्षमता को नार्वेजियन kan (= सकना) तथा अं० can (सकना) के अर्थ में लिया गया है। यदि kan तथा can का उच्चारण 'कैन' करेंगे तो व्यु० हो जायेगी 'कएन' = करना, किया गया। इसी अर्थ में यह 'कएन' कु०, अवधी, भोजपुरी में प्रचलित है।

## कुमाउनी : स्वीडिश

कु० झन, झएन; झन्नलि, झनालि = झनझनाहट, झनझनाहट देने की क्रिया, झन्न उत्पन्न करने वाली वस्तु।
स्वी० ejentli - ई/ए जेन्तलि/ई झएन्टलि = वास्तविक या यथार्थ।
व्यु० (i) ई = यह + झइन्त लइ = यह झइ (झन्न) लाती है। (ii) ई झएन् टलि; टलि = टालना, हटाना। कु० टाल्नु, टलि गौछ (टल गया है) का अर्थ है वह द्रव्य जो दूसरे को दूर करने के लिये झन्नझनाहट उत्पन्न करता है।
व्या० शरीर में लोक की तरह किसी वस्तु के स्वरूप को देखने मात्र से उसके यथार्थ का ज्ञान नहीं होता है। वहाँ विद्युत तरंगों द्वारा उत्पन्न झन्न या झन्नझानहट से वस्तु की यथार्थता का ज्ञान होता है। किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान वस्तु और लार की रासायनिक क्रिया से उत्पन्न झन्तलि (झन-झनाहट) से होता है। इसी का नाम स्पर्श ज्ञान या यथार्थ की अनुभूति है।

कु० चिमिट, चिम्मट, जिमड़, जिम्मड़,जिमड़ो = चिपचिपा, चिम्मट।
स्वी० gemyt - गिमिट/गिम्यट = कठोर, चिम्मट, स्वभाव (मृदु या कठोर)।
व्यु० नार्वेजियन gemytt (गिमिट्ट) की तरह (पृष्ठ- 69)।

कु० सटीनु = सटा हुआ, स्थिर, चिपका हुआ।
स्वी० sten - स्टेन/सटेन = पत्थर।
व्यु० नार्वेजियन sten/stein की तरह (पृष्ठ- 70)।

कु० ताक/ताखा = रखने का टांड़।
स्वी० tak - ता:क = छत सीलिंग।
व्यु० नार्वेजियन की तरह (पृष्ठ- 69।

कु० भूड़ेन/भूड़ीन = ऐसे जंगल (भूड़) में फँस जाना जहाँ से निकलने का रास्ता न मिले।
स्वी० buren - ब्यू रेन/ब्यूरीन/भूड़ीन, भू-रएन = पिजड़ा।
व्यु० ब्यू = बीज, रऐन (= रहना) = बीज बनने का स्थान या वातावरण।
व्या० (i) बीज सदा कोषिकाओं के अन्दर ही बनता है। (ii) भूड़ (जंगल) में फंस जाना या भू (पृथ्वी) में रहना, पिंजड़े में जकड़ जाना ही है। पुराण कथाओं के अनुसार पृथ्वी में जीव अनेक बंधनों से युक्त होता है। रूसो ने भी ऐसा ही कहा है कि व्यक्ति स्वतंत्र पैदा होने पर भी सर्वत्र जंजीरों से जकड़ा हुआ है।

कु० ताप, तापा = ऊष्मा, ऊष्मित।
स्वी० tappa - तापा/ताप्पा = शिथिल, मुलायम, ढीला (lose)।
व्यु० नार्वेजियन 'tapa' की तरह (पृष्ठ- 70)।

**कृ०** व्यल = कटोरी, वेल (लता)।

**स्वी०** valja - वाल्जा/व्यलजा = चुनना, चुनाव करना।

**व्यु०** (i) वाल > बाल = बाली (जौ, भुट्टे की) + जा = बाल में जाना।

(ii) व्यल > बेल + जा = जाना, बेल में जाने का विकल्प ही चुनाव है।

(iii) व्यल = कटोरी = विभिन्न कोषों में जाने का विकल्प भी चुनाव है।

**व्या०** यह व्युत्पत्ति शरीर वृक्ष के आधार पर की गई है। व्यल (कटोरी = खाने का स्थान), व्यल (लता या शाखा) तथा बाल (बीज) में से एक में जाने के विकल्प के कारण ही 'व्यलजा' का अर्थ 'चुनाव करना' किया गया है।

**कृ०** मसते/मयस्ते = मस, भस्म बनना, लेपन करना/साज्-संवार पालन- पोषण, कष्ट निवारण की इच्छा का क्रियान्वयन।

**स्वी०** maste - मसते/मयस्ते = अवश्य, निश्चयपूर्वक, पड़ना, पड़ेगा (अं० must मस्ट)।

**व्यु०** (i) मस + तए = मस (भस्म, आक्सीकृत द्रव्य) का होना, बनना, लेपन करना। (ii) मयस् + तए = मय तत्त्व का होना, बनना। 'मय' वही पौराणिक मय दानव है जिसे निर्माण कला का विशेषज्ञ कहा गया है। जिसकी उत्पत्ति से आगे के विकास की अवश्यम्भावित निश्चित हो जाती है।

**व्या०** स्वीडिश मसते/मयस्ते/मास्ते (टे) को अंग्रेजी में must (मस्ट) कहा जाता है। पौराणिक जलप्रलय के पश्चात् जब पृथ्वी तत्त्व का शरीर में अभाव हो जाता है तो प्राकृत पृथ्वी की तरह शरीर में भी मूष (चूहा) मिट्टी खोदकर गिराता है। शरीर में इसी मिट्टी का नाम 'मस' है। जो वहाँ द्रव रूप में होती है। इसे 'मय' इसलिए कहा जाता है कि इसमें विनाश के पुनर्निमाण की इच्छा शक्ति होती है। एक ही द्रव्य के ये तीन नाम है। इस द्रव्य के उत्पन्न होते ही यह आशा हो जाती है कि अब आगे का विकास क्रम पूर्वकाल की तरह अवश्य वृद्धि करता जाएगा। अं० must- (मुषत/मूषत) ही गणेशवाहन की प्रथम क्रिया है, जिसे 'श्री गणेशाय नमः' द्वारा व्यक्त किया जाता हैं। वाह्य प्रकृति में इसे काई या शैवाल कहा जाता है; इसकी उत्पत्ति से आगे का विकास सम्भव होता है, यज्ञवेदी के निर्माण में चूहे द्वारा उत्सर्जित मिट्टी का प्रयोग होता है। ये सभी तथ्य बताते हैं कि अं० मस्ट तथा स्वीडिश मसते/मास्ते की व्युत्पत्ति का आदिकालीन आधार मस्/मय या मुष् की ही प्रक्रिया है, रसायन शास्त्र में तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का गुणाधारित नाम 'मूष' है। यह 'अस्ति' की भाषा है, इसी का नाम प्रारंभकर्त्ता (गणेश या गणेश वाहन) है, जो आक्सीकृत होने से 'मस' तथा जिसमें नवीन सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा शक्ति होने से 'मय' कहा जाता है।

## कुमाउनी : डेनिश

कु० फिन दएर = फैलाने, बिछाने वाला; पइन दएर = बटने, झूल देने वाला।
डे० finder - फाइन्डर/फिन दएर (दीर) = खोजकर्त्ता।
व्यु० इसकी व्युत्पत्ति प्रा०ना० फिन्नारी की तरह है (पृष्ठ- 69)।

कु० गाज = फेन।
डे० gaas - गास्/गाज = हंस।
व्या० गाज् = फेन। यही प्रकृति का हंस है जो सफेद होता है और जल व कीच में तैरता है। इसके बुलबुले वायु में भी उड़ते रहते हैं। इस प्रकार इसमें पौराणिक पक्षी हंस की जल, थल, नभ में समान गति की विशेषताएँ होती हैं।

कु० घराड़ी, गराड़ी = भूमि में खींचकर ले जाना, कुएँ की गराड़ी।
डे० graede - ग्रैड/ग्रैडे/गराइडे (दे) = चिल्लाहट, शोर।
व्यु० गराइड़े > गरैड़े = खींचते हुए ले जाना या उससे उत्पन्न शोर। कुमाउनी में यह क्रिया और संज्ञा तथा डेनिश में विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।

कु० जीभी, जीभ = लार, जीभ।
डे० give - गिव/गिवी/जिवी/जीभी = देना।
व्यु० सामान्य व्यु० गई + वइ (भइ) = जाने की क्रिया का सम्पन्न होना ही गिव या देने की क्रिया है। इसकी यथार्थ व्याख्या है जी वइ (= वहि) = जी का बहना या इच्छा का बहना। 'इच्छा' का प्रतीक लार टपकना होता है। जीवई ही जीभी या जीभ है। जीभ सदा लार देती रहती है। इसी अर्थ में जिव > जिभ अथवा अं० में ज का ग बन कर 'गिव' का अर्थ देना होता है।

कु० व्यल = कटोरी, बेल (लता)।
डे० - vaelge = वैल्जे/व्यैगए/ व्यैलजए = चुनाव करना, चुनना।
व्यु० व्यल जए अथवा बेल जए = कटोरी की ओर जाना अथवा बेल (शाखा) की ओर जाने में से एक का चुनाव करना। देखें स्वीडिश valja (व्यलजा) (पृष्ठ- 72)।

---

## कुमाउनी : लैटिन

कु० फाक्/पाक = फांकना/पकाना या खाना बनाना।
लै० fac - फाक = बनाना।
व्यु० फांकना खाने की क्रिया है, इसमें वस्तु लाना, चबाना, लार घुलाना, पाचक रस डालना आदि सभी क्रियायें सम्मिलित हैं। फ के विकल्प पर प होने से यह

'पाक' (पाच भी) हो जाता है जो पकाने की क्रिया है। पाक की व्यु० है पआक > पयाक = जिसे पया जाय, गूंथा जाय। खाने की क्रिया में अन्न को चबाया जाता है, यही गूंथने या पयाने की क्रिया है। अन्य अनेक क्रियायें हैं जो अन्न को ऊष्मा देती हैं। अत: 'पाक' का अर्थ भी पकाना या भोजन बनाना है। प और फ के अन्तर को हम ऐसे समझ सकते हैं, जब एक रस्सी को पयाते हैं तो दाहिने से बांये को हाथ घुमाते हैं यह 'प' है जब पयायी हुई दो रस्सियों को मिलाकर पया जाता है तो दोनों को मिलाकर उल्टी दिशा में पयाया जाता है, उल्टा होने से इसे 'फ' या 'फया' कहा जाता है। दिशाओं में अन्तर है परन्तु क्रिया में अन्तर नहीं है।

कु० हुरनु = जल्दी-जल्दी खाना।
लै० horto - होर्तो = बगीचा।
व्यु० हओर् (होना) + तओ (= तवा) = तवे का परिपक्व होना अर्थात् वह स्थान जहाँ से फल (खाद्य) प्राप्त हों। जहाँ से 'हूरने' की पूर्ति हो अथवा जहाँ जाकर हूरा जाय। भोजपुरी में भी 'हूरत हइ' (खा रहे हैं) शब्द प्रचलित है।

कु० उनउ छ = उनका है (उनउ = उनका, छ = है)।
लै० unus - ऊनुस/उनउ छ = एक, या वह, उस एक का = उनका, उसका।

कु० साम्/सामु = मूसल के सिरे में लगने वाला लोहे या तांबे का गोल घेरा, मुद्रिका, रिंग।
लै० summum - सुम्मुम्/सुम्मुँ = सर्वोच्च, सबसे ऊपर, श्रेष्ठ।
व्या० पुराणों में इसे 'शम्भु' कहा गया है। कहीं कहीं इसे कुण्डल या मुद्रिका भी कहा गया है। इसे पृथ्वी की परिधि भी कहा गया है। जिस प्रकार मूसल में लगा 'सुम्मुँ' ओखली में अन्न को कूट पीस कर बाहर को छलकाता है उसी प्रकार शरीर यांत्रिकी का सुम्मुँ अन्न को परिपाक कर सम्पूर्ण शरीर में फैला कर पोषण करता है। वही शरीर ब्रह्माण्ड का नियंत्रक, प्रशासक आदि होता है, इसी अर्थ में 'सुम्मुम्' को सर्वोच्च कहा गया है।

कु० सी दिन छ = सिल देना है। सइ (य) दिन्स (दिन्छ) = सय/सइ देने की क्रिया का होना। (सय/सइ = मीठी लपसी)।
लै० sedens - से दीन्स/सेडीन्स/सयदीन्स = बैठना।
व्यु० से/सी = सेना + दिन्छ = सेने की क्रिया करना/सेने की क्रिया अण्डे में बैठकर की जाती है अत: सेने की क्रिया का अर्थ बैठना लगा लिया गया है। सेने से चिपकना या सिल जाने (चिपकने) की क्रिया भी होती है, अत: 'सी दिन्छ' भी बैठने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'सय' (लपसी) देने पर वह चिपक जाती है अत: यह क्रिया भी बैठने का अर्थ देती है।

**कु०** ताकइरए = ताक में ही रहना (दीवाल का ताखा, या अलमारी का ताक)।
**लै०** tacere - ताकी रए = शांत होना।
**व्यु०** ताकइ = ताक में + रए = रहना या रई (रख देना)।
**व्या०** शरीर के ऊष्ण या बहते (अर्थात् अशांत) द्रव्यों को एक आले या दीवाल में रख दिया जाता है अर्थात् उसे चिपका दिया जाता है तो वे शांत हो जाते हैं।

**कु०** इस्स्/इस्सए = कालिख, राख/कालिख या राख का बनना, होना।
**लै०** esse - इस्से/ऐस्से/इस्सए = होना, बनना।
**व्यु०** इस् या इष् (राख, आक्सीकृत द्रव) + सये = (इष् का) द्रव रूप में होना। कालिख या राख का होना या प्रकट होना, बनना।
**व्या०** शरीर में इष् वह द्रव्य है जिसमें आगे सामान्यरूप में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है। जैसे काढ़ा स्वयं में इष् (es) है, कार्बनडाइआक्साइड, या आक्सीजन आदि द्रव्य सभी इष् श्रेणी में आते हैं, सय (se) द्रव रूप में आक्सीकृत राख है। पौराणिक जल प्लावन के बाद नवीन सृष्टि के निर्माण में सर्वप्रथम यही इष् अस्तित्व में आता है। जब यह आक्सीकृत होता है तो लपसी की तरह गाढ़ा हो जाता है। पुराणों में इसे ही मुनियों, तपसियों, ऋषियों का भोजन कहा गया है। प्रकृति में यह 'काई' (शैवाल) कही जाती है। जो जल और वायु में स्थिति अनेक तत्वों के रासायनिक संपृक्तीकरण से बनती है। बनने या होने की इसी प्रक्रिया का नाम 'इस्से' या 'ऐस्से' है।

**कु०** कुर, कुरा, कुरपट्ट = कुरी घास के गोल-गोल काँटेदार फलों का नाम कुर, कुरा है। चारों ओर कुरों का बिखरा होना ही 'कुरपट्ट' है। जंगल में यह भेड़, बकरियों के बालों में चिपके रहते हैं। इनसे शरीर में चुभन, खरास आदि होती है। 'तै बट कुरपट्ट छ, सावधान रए= उस[1] ओर[2] कुर ही कुर[3] हैं[4] सावधान[5] रहना[6]।
**लै०** curare - कुररए/चुररए = सावधानी बरतना, चुराना अर्थात् पकाना।
**व्यु०** कुरा + रए = कुरा रए/ कुरआ रए = यहाँ पर कुर हैं। इसी का अर्थ है सावधान रहना। दूसरी व्यु० क से च का विकल्प कर चुराना (जैसे दाल) है। इसमें सदा सावधानी रखनी होती है, कि आंच इतनी हो कि दाल उबल कर आग न बुझा दे अथवा अधिक आंच से दाल जल न जाय। तीसरी व्यु० चुराने की क्रिया है उसमें सावधानी अति आवश्यक होती है। चोर को भी और मालिक को भी। इन तीनों में प्रथम व्यु० ही मूल है।

**कु०** दइ कइ रए = दही बना रहा हूँ।
**लै०** dicere - डिकेरे/दिकेरे/दइ कए रे = कहना, बताना, बोलना।
**व्यु०** दइ = दही (कु०) + कइ = करना या खइ (खाना) + रए = लगातार अर्थात्

दही को बनाने की क्रिया का अर्थ 'कहना' लिया गया है। व्या० दही बनने में वैक्टीरिया की ऊष्मा से एक ध्वनि निकलती है जो दूध या दही भक्षण के साथ निकलती है। यही ध्वनि 'कहना' या 'बोलना' है। सं० दधि, दह् धातु से बनती है। यह दह 'दहन' अर्थात् ऊष्मा की क्रिया है।

कु० औनिरए/औनि रई/उइनि रईं = आना, आने की क्रिया, आ रहे हैं।
लै० uenire - उएनिरई (ए)/उइनी रई = आना, आने की क्रिया।
व्यु० लै० में उ और कु० में उ, औ दोनों का प्रयोग है, यह कोई विशेष अन्तर नहीं है, प्राय: उ का ओ या औ मैं उच्चारण होता है।

कु० मौन/मौनी रे = मधुमक्खी/सावधान करने के अर्थ में मधुमक्खी होने की चेतावनी देना।
लै० monere - मोनीरए, मोनेरे = चेतावनी देना, सावधान करना।
व्यु० मौनइ/मौने = मधुमक्खी + रए = हैं = (यहाँ/वहाँ) मधुमक्खी हैं। इसका स्वत: अर्थ निकलता है कि सावधानी वरतें। जैसे कु० में याँ मौन रए छन, जन जाये = यहाँ 'मधुमक्खियाँ'[2] हैं,[3] मत 'जाना'[4]।

कु० औड़, औड़नु/वराति औ = घड़े से पानी निकालना/नीचे उतरना या नीचे को बहना।
लै० oratio - ओरातिओ/औड़ातिओ/वरातिओ = किसी क्रिया का समर्थन करना, क्रिया के समर्थन में बोलना, प्रार्थना करना।
व्यु० वर = नीचे को आना (कु० वोरनु/वरनु)। आतिओ = मैं पीछे से आ रहा हूँ।
व्या० घड़े या सुराही से पानी निकालते समय वड़-वड़ का शब्द होता है। सुराही से बहते जल को एक प्रक्रिया में लें तो ऐसा लगता है जल की वड़-वड़ (वर-वर) ध्वनि और पुन: सांस लेने की ध्वनि मिलकर कह रहे हों "तुम चलो मैं आता हूँ"। अथवा 'औड़ातिओ' (औड़ने = बहने या गिरने की) ध्वनि स्वयं बता देती है कि औड़ने की क्रिया सम्पन्न हो रही है।

अब आगे शब्दों की व्युत्पत्ति उच्चारण में ही देखें। अलग से व्याख्या नहीं दी गई है—

कु० (आब्) ढुको = (अब) ढुकता है (बलात प्रवेश करना), तेजी से बढ़ता है, आगे जाता है।
लै० abduco - ऐबडूक/अबड्यूक/आब् डुको (ढुको) = आगे बढ़ना, लेते हुये बढ़ना, जाना।

कु० अबेर/अबेरो = देर, असमय, निश्चित समय के बाद/जो सदा देर से आता है, अनुत्तरदायी।
लै० aberro - ऐबेरो/अबेरो = घुमक्कड़, लापरवाह, रास्ता भटकने वाला।

कु० अबनिजो/आब् नइ जओ = अब नहीं जाऊँगा (जायेगा)/नहीं कहना।
लै० abnego - एब्नेगो/अब्नीजो = मना करना, इंनकार करना।

कु० आब् न औ = अब मत आओ।
लै० abnuo - अब्नुवो/अब्नउ औ = प्रधान द्वारा न आने का आदेश।

कु० आब् रप्टिओ/आभ् रप्टिओ=अब फिसल गया है/अग्नि की लपटें आती हैं।
लै० abruptio - एब्रप्टिओ/अब्रप्टिओ = फाड़ते हुए जाना, एकाएक, सहसा।

कु० आँक दिओ/आँच दिओ = आंच देना, गर्म करना, उबालना, जलाना। आँकनु/आँकीनु = सेकना, जलाना।
लै० accendo - एकेन्दो/अक्सेन्दो/अकेन्दो/आँकीन्दो= जलाना, गर्म करना।

कु० आँकिर भए = आंक् देना, जला देना, जलन देने वाला।
लै० acerbe - ऐकेर्बे/आँकेरबे/आँचेर्बे/आँकेर भए = दुष्टतापूर्ण ढंग से, कड़वापन, खट्टा, जलन।

कु० आँच्तिओ/आँक्तिओ = गर्म करना या होना, गर्म होने की क्रिया का होना।
लै० actio- एक्टिओ/आक्तिओ = गति, क्रिया (आँच से ही गति उत्पन्न होती है)।

कु० आद जुटौ = नमी लाना, नम बनाना, आद (नमी) जुटाना।
लै० adjuto - ऐडजूट/ऐडजूटो/आदजुटो = सहायता देना, क्रियाशील करना। (बिना आद (नमी) के पेड़ पौधे, या बीज में कोई क्रिया नहीं होती है)।

कु० आद् जुटोर (जुटार) = जल देने वाला, सींचने वाला, नमी एकत्र करने वाला।
लै० adjutor - ऐडजूटर/ऐडजूटोर/आद जुटोर = सहायक (सं० अद = खाना)।

कु० आद् मिटौ/आद्म्यटो = आद का मिटाना, सुखाना।
लै० admitto - ऐडमिटो/ऐडमिट्टो/आद्मिट्टओ (वो) = बाहर करना, बाहर निकालना (मिटाना)।

कु० बेलियोस (छ)/बेलिओउस (छ) = बेला हुआ है/बेलना है।
लै० bellious - बेलिओउस/बेलियोस = नियन्त्रित, योग्य, युद्ध (कार्य) की तैयारी, युद्ध प्रतिद्वंदिता जैसी स्थिति।
**विशेष** : कु० में इसका उच्चारण इस प्रकार है— बेल्लिओउस या बेल्लिओउछ। इसका 'ओ' 'हो' (होना) में परिवर्तित होकर 'बेल्लिहोउस (छ)' हो जाता है जिसका अर्थ बेलने की क्रिया सम्पन्न होना या करना एवं 'बेल' बनने की क्रिया का होना भी है। उच्चारण का यह ढंग (शैली) नेपाली में भी विद्यमान है।

कु० भएओ/बएओ (बहेओ) = होना/बहना।
लै० beo - बेओ/बएओ (बहेओ) = आर्शीवाद देना, प्रसन्न रहना, धनी होना।

(सं० "सुखी भव")।

**कु०** ब्वनाइतो छ/बुनाइतोछ/भुनाइतोछ = बनाया हुआ है/बना हुआ है/भुना हुआ है।

**लै०** bonitas - बोनीतास/बुनीता छ/भुनीता (भुनाइता) छ = अच्छा, स्वादिष्ट, अच्छाई, श्रेष्ठता, उत्तम, मीठा।

**विशेष :** बुनने (रासायनिक सम्मिश्रण) से तथा भूनने (ऊष्मित होने) की क्रिया से उत्पन्न 'ताश' (ताशीर = एक स्वाद विशेष जो पकने पर बनता है— मिताश, बताश आदि)।

**कु०** चापिओ/चाप्नु/खाप्नु/खाप्यो = चापा, दबाया हुआ/चापकर दबाना/एक के ऊपर एक खापना (रखना)/एक के ऊपर एक रखा हुआ।

**लै०** capio- केपिओ/चापिओ/कापिओ (खापियो) = लेना, ग्रहण करना, अधिकार में करना, जगह लेना (छापिओ)।

**कु०** कारु छ/ सारु छ = कारा हुआ (निर्मित)/कठोर, सख्त, कुरकुरा।

**लै०** carus - कारुस/सारुस/चारुस = मंहगा, प्रिय, प्रशंसा योग्य, सुन्दर।

लैटिन के निम्नलिखित शब्दों की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या "भारत के लोगों का संविधान एवं दर्पण" (ले० हरिदत्त शर्मा) के दर्शन खण्ड में की गई है— constitutus (कान्स्टीतूतूस) पृ० 97, 100 saecularis (साइकुलारिस) पृ० 103, parabola (पाराबोला) पृ० 107, liber (लिबेर), libertas (लिबेर्तास) एवं liberalies (लिबेरालिस) पृ० 110-111, एवं aequalis (ऐक्वालिस)पृ० 112।

---

## कुमाउनी : ओस्कान और उम्ब्रियन

प्राचीन इटली में ओस्कान और उम्ब्रियन भाषायें लैटिन काल में बोली जाती थी। ये भाषायें ३५० इस्वी पूर्व से १०० वर्ष ईस्वी पूर्व तक तत्कालीन इटली में बोली एवं लिखी जाती थी। ओस्कान इटली के दक्षिणी भाग में तथा उम्ब्रियन उत्तरी भाग में प्रचलित थी। ऐसा माना जाता है कि इन दोनों भाषाओं से लैटिन भाषा भी प्रभावित थी। इटली की इतनी प्राचीन (लगभग २५०० वर्ष पूर्व) के अनेक शब्द उसी रूप में कुमांउनी एवं भारत की अन्य भाषाओं में मिलते हैं, भाषाविदों को यह आकलन करने का श्रम उठाना होगा कि प्राचीन इटली की ओस्कान और उम्ब्रियान भाषाऐं भारत से वहाँ गयी थी अथवा भारत में वहाँ से आयी थी? अभी यह स्थापना पश्चिमी भाषाविदों एवं इतिहासकारों ने की है कि ग्रीक एवं लैटिन सभ्यता पश्चिम से भारत की ओर आयी थी। परन्तु दक्षिणी यूरोप

की स्थानीय भाषाओं को सभ्यता के प्रसार में प्रयुक्त नहीं किया गया है। अब समय आ गया है कि नये सिरे से विश्व की भाषाओं का नये दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय। यहाँ पर कुमांउनी एवं ओस्कान तथा उम्ब्रियन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

**कु०** लिजा तुइछ/लिजा त्वइस/ली गाठुइस (छ) = तुम ले जाते हो/ले जाता है/गांठ कर ले जाता है।

**ओस्कान**— ligatuis- लीगातुईस/लीजातूईस = अम्बेसेडर के लिये, राजदूत के लिए।

**व्यु०** लीजा (कु० लिजा) = ले जाना, तउ (व) = तवा, इषुं = आक्सीकृत द्रव्य।

(i) लिजा तउ इषु = ले जाता है तवे से द्रव्य विशेष।

(ii) ली गाठु इस — ली = लेना + गाठुइस = गांठ में बांधना, रखना।

**व्या०** प्रकृति में चिड़िया जो खाना ले जाती हैं वह मनुष्य की तरह गांठ में बांध कर नहीं ले जाती है। वह मुंह में रखकर या निगल कर ही अन्यत्र के लिये भोजन ले जाती हैं। यहाँ पर राजदूत का इतना ही अर्थ है कि भोजनालय से बाहर रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति राजदूत ही है चाहे चिड़ियों के बच्चे हो या अन्य कोई।

**कु०** तव तए (तई) = तवा उस ओर (दो, रखो)।

**उम्ब्रियन**— tute - टूटे/तूते/तउ तए (तई) = लोगों के लिए/लोगों को।

**व्यु०** उम्ब्रियन से इस शब्द की व्यु० सम्भव नहीं है। कु० द्वारा इसकी व्यु० सम्भव हो जाती है। तउ/तव= तवा अर्थात् पका भोजन। तई/तऐ = उस ओर अर्थात् भोजन उस पार हेतु या उनके लिए।

**व्या०** प्राचीन परंपरा के बिना इसे समझना कठिन है। कुमांऊ में जहाँ खाना पकता है उसे 'चुलान' कहा जाता है उस स्थान को मिट्टी की एक मेड़ से घेर दिया जाता है। मेड़ के अन्दर प्रतीक रूप का 'तवा' अर्थात् पका भोजन होता है। खाने के लिए सभी व्यक्ति उस मेड़ के बाहर बैठते हैं (यही जनता या लोग हैं)। रसोई से मेड़ के बाहर के लिये तहां (तए/तई) का अर्थ ही है मेंड़ के बाहर के लोगों के लिए तउ/तवा या भोजन। भारत में अनेक जगह सामूहिक भोज को 'कढ़ाह' भी कहा जाता है जो 'कढ़ाई' से व्युत्पन्न है।

**कु०** परे = हटना, हटाना, अन्यत्र, दूर जाना। हिन्दी, भोजपुरी, अवधी आदि में भी यही अर्थ है।

**ओस्कान** — prai - प्रै/परै
**उम्ब्रियम** — pre - प्री/परे
> = पहले।

**व्यु०** (i) पर (दूर) + अई (आता है) = परे हटो कोई आता है।

(ii) पर (दूर) + अऐ (आता है) = परे हटो कोई आता है।

**व्या०** शरीर में जब तक एक द्रव्य उस स्थान से परे (दूर) न हटे तब तक अगला

द्रव्य वहाँ नहीं आ सकता है। अत: बाद के आने से पहले 'परे' हटने की क्रिया का ओस्कन, उम्ब्रियन, लैटिन में 'पहले' अर्थ लिया गया है। लै० prae (परै) = पहले (व्यु० पर + अए)।

**कु०** आ बट — बटने की क्रिया का आना। (बटना = रस्सी बटना, खिचड़ी का पक कर बटना, मिलना)। औट = औटना, उबलना। उते/उतई = पकाना, ऊष्मित करना, भूनना। (इसी से 'उत्योल' बना है)।

**ओस्कान** — avt - आवट
**लैटिन** — aut - औट
**उम्ब्रियन** — ute- उते/उतई
→ = लेकिन, किन्तु (but) ।

**व्यु०** कु० शब्दों में इसकी व्यु० क्रमश: निहित है। इन तीनों का अर्थ भी एक ही है, भुनना और पकना। 'बटने' का वैज्ञानिक अर्थ रासायनिक ऊष्मा द्वारा परिपक्व होना है। अं० का 'but' (बट) मूल रूप में 'बुट' है कु० में यह 'भुट' = भटनु (= भूनना) कहा जाता है। इसका 'परन्तु' या 'लेकिन' अर्थ भट, भट्ट (काला सोयाबीन) के व्यवहार के आधार पर लगाया गया है। जो भूनने पर उछल कर अन्यत्र चला जाता है। यह गति शीलता अग्नि की मात्रा पर निर्भर करती है। इसी क्रिया से यह अर्थ लगाया जाता है कि 'भट' भूनने से उछलकर यहाँ आया, यदि/परन्तु आंच और तीव्र होती तो उसकी दिशा उस ओर को होती। यही अर्थ 'आ वट (बट)'/'औट'/'उते' से लिया गया है।

**कु०** आँच/आक तव द = तवे में आंच दो या तवा आंच देता है।
ऐठु = ऐठना।
अगितो/आगि तवो = तवे में आंच दो या तवा में आंच है/आग आने दो।

**ओस्कान** — (i) actud - आक्तुद/ऐक्टुद
**उम्ब्रियनि** — (ii) aitu - ऐटु/आइ तउ/ऐठु
**लै०** — (iii) agito - अगितो/आगितो
→ = (अपना) काम करने दो।

**व्यु०** उक्त की व्यु० इस प्रकार है— (i) आच/आक तवो द = तवे में आंच दो, (ii) ऐट या ऐठना शरीर में उष्मा से ही सम्पन्न होती है अत: इसका अर्थ भी ऊष्मित करना है। (iii) अगितो/आगि तो= आंच देने की क्रिया सम्पन्न करना है।

**व्या०** यह क्रियायें कैसे सम्पन्न होती हैं? जल गर्म होने की प्रक्रिया में उक्त तीनों शब्दों के अनुरूप क्रियाएँ होती हैं। शरीर के तवे (पेट) में आंच (ऊष्मा) बनने पर ही सभी अंग प्रत्यंग अपना-अपना कार्य करते हैं।

**कु०** मेड़ी दिईछ = मेड़ दी है, बनाई है।
मेड़ी दिएछ = मेड़ देनी है। मेड़ बनाना अथवा किसी वस्तु/व्यक्ति को घेर देना (मेड़ना)।

**ओस्कान**— meddiss - मेड्डीस/मेडीस/मेड्डीच्छ= मजिस्ट्रेट, दण्डाधिकारी, कार्याधिकारी।

medikeis - मेडीकएइस = मेड़ बनाने वाला, दण्डाधिकारी।

**व्यु०** मेड़ दीस्स (दीच्छ) = मेड़ देना है। मेड़ बांधना है।

**व्या०** मेड़ बांधने की क्रिया का सम्पादन किसी उच्चतर के आदेश होता है। पुराणों में आरुणि ने अपने गुरू के आदेश से मेड़ बांधी थी। पौराणिक कथाओं में इसे 'वृत्र' (मेड़ या घेरा) कहा गया है। मेड़ द्वारा किसी को रोकना या घेर देने का जो आदेश दे वही दण्डाधिकारी है।

**कु०** अन्टी बांधनु/अन्टी (में) करनु — अन्टी में बांधना, एक साथ रखना।

**उम्ब्रियम**— antakres - अन्टाकरेस/अन्टाकरीस = एकत्र करना, निकट लाना या सुरक्षित रखना।

**व्यु०** अन्टा + करेस (छ)= अन्टी में करने या रखने की क्रिया। यह सामान्य व्यु० है। यथार्थ व्यु० है— अन् (अन्न) + ताक (ताक, ताखा) + रऐछ (रहना) = अन्न को ताक में रहने देना अथवा रखना ही उसे निकट लाना या बांधना है।

**कु०** हुर्तिन = कूंचना, खाना।

**ओस्कान**— hurtin - हूर्तीन = कुंज में (in the grove)।

**व्यु०** हव + उड़तईन = हवा से बिखरना, टूटना। पुराण कथाओं में हनुमान (पवनपुत्र) ने लंका में वृक्ष समूहों की तोड़फोड़ की थी वह हूरना, और हुर्तीन खाना और गिराना, कूचना और तोड़फोड़ है। खाने का सम्बन्ध बगीचे से है, तथा खाने में ये दोनों क्रियायें साथ होती हैं अत: इसके दोनों अर्थ (बाग में या खाना) लग जाते हैं।

**कु०** जेड़ीनु = जुड़ना, चिपकाना।

**उम्ब्रियन** = zeref - जेरेफ/जेड़ेप = बैठना।

**व्यु०** जेरेफ/जेरीफ को जेड़ीफ या जेड़ीप (ब) उच्चारित करें तो यह जुड़ना या बैठना अर्थ देता है, जैसा कि कु० में है।

**कु०** ताकइ ज/ताखाइ ज = ताक, ताखा या टांड में जाना या रखना।

**उम्ब्रियन**— takez - ताखेज, ताकेज = शांत, हलचल रहित।

**व्यु०** ताखइ (ताक में) ज = जाना। जब कोई वस्तु या द्रव्य ताख में रख दिया जाता है तो वह शान्त हो जाता है, इसकी व्यु० शरीर की क्रियाओं के अनुरूप करनी चाहिये (देखें लै० ताकीरए पृ०-75)।

**कु०** ऊ पछान्नु/ऊ पसान्नु— ऊ (लाल गेहू) को पछोरना। ऊ के खाने को पसाना (जैसे माँड़ पसाना)।

**ओस्कान**— upsannam - उप्सान्नम = किसी काम को करना या होने देना।

**व्यु०** कुमांऊनी ऊ पसान्नु/ऊ पछान्नु की तरह है।

**कु०** हेरनु/हेरतेर/हेरतीर = हेरना, खोजना/हेरना/तीर पर खोजना, हेरना।
**उम्बियन**— herter - हेर्तेर/हेर्तीर = आवश्यकता होना।
**व्यु०** हएर तिर/हएर तीर = शरीर में तिर (= तिराना, हटाना) तथा किसी वस्तु को पाने के लिये 'तीर' (= किनारे) जाना होता है। अत: दोनों आवश्यकताएँ एक ही शब्द द्वारा व्यक्त की गई हैं। पुराणों में इससे मिलता शब्द 'तीर्थ' है।

---

## कुमाउनी : रोमांस भाषाएँ

रोमांस भाषाऐं लैटिन से विकसित कही जाती है। ये भारत यूरोपीय भाषा की इटालिक शाखा से सम्बद्ध मानी जाती हैं। इसमें पुर्तगीज, स्पेनिश फ्रेंच, इटालियन एवं रूमानियन पाँच मुख्य भाषाएँ हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानीय भाषाएँ इनमें हैं, जिनमें स्पेनिश भाषाओं में काटालान, फ्रैंच भाषाओं में ओक्सीटान तथा इटालियन के भीतर सार्डीनियन भाषायें प्रमुख हैं। यहाँ पर इस वर्ग के कुछ शब्दों की तुलना कुमांउनी से की जाती हैं।

**कु०** रौटा/रोड़ा/रोटा (र्वटा) = रौटि पकाने की लकड़ी/सिलबट्टे का बट्टा/रोटी। इन शब्दों की व्यु० नीचे लैटिन एवं रोमांस भाषाओं के शब्दों में दी गई है।
**लै०** rota - रोटा = चक्र। **व्यु०** रौटि (लपसी) पकाने के लिये एक लकड़ी से उसे चलाया जाता है, इस क्रिया में यह लकड़ी चक्र बन जाती है। अथवा र्वटा = रोटी भी चक्र का ही रूप है।
**पुर्तगीज**— roda- रोडा = चक्र। व्यु० रू+दा = जो चक्रीय गति से चलने पर रू (= रूई) की तरह महीन पीसे। जैसे सिल में बट्टा (कु० रोड़ा) चलाने की क्रिया चक्रीय होती है।
**स्पेनिश**— rueda - रुइदा/रुइड़ा = चक्र। **व्यु०** रुइ+दा जो रुई (महीन, मुलायम द्रव्य) बना दे।
**काटालान**— roda - रूदा/रोड़ा = चक्र। **व्यु०** रु+दा। रौंदा जो रौंद कर रुई (द्रव्य का विकार) दें। शेष व्यु० पुर्त० 'रोड़ा' की तरह है।
**फ्रैंच**— roue - रोयु/रोउ = चक्र। व्यु० रु+उए = रुइ को उवाना (कूटना, पीसना, फटकना आदि पूरी प्रक्रिया) अथवा रओ+उए = जो उवाने के बाद शेष वचे= रोटी।
**इटालियन/सार्डीनियन** - rota — रोटा = चक्र।
**व्यु०** रोटा (रोटी) या रौटी (लपसी) को चक्रीय गति में चलाने की लकड़ी।
**रूमानियन**— roata - रोआटा/र्वाटा = चक्र।
**व्यु०** रु + आता > रुयाता = जो किसी वस्तु को रूई की तरह महीन करे। रुई

धुनने की रस्सी भी चक्र की गति से ही क्रिया करती है।

**व्या०** उपरोक्त सभी भाषाओं के शब्दों का अर्थ चक्र या रोटी है। शरीर में रोटी का अर्थ द्रव रूप में अन्न रस होते हैं। ये चक्रीय गति से शरीर में लुढ़कते बढ़ते रहते हैं। जो रोग, भूख, कुपोषण आदि को छिन्न-भिन्न कर देते हैं, वैसे ही जैसे पौराणिक कृष्ण का चक्र शत्रुओं को छिन्न भिन्न कर देता है, तथा मित्रों की रक्षा करता है। रुई का अर्थ है महीन वस्तु, 'र' का 'ल' में परिवर्तित करें तो यह 'लोई' हो जाती है जैसे आटे की 'लोई'। यह चक्र (चकरी) से महीन होती है तथा चक्रीय ढंग से ही यह लोई भी बनती है। 'रोड़ा' बट्टे का मूल रूप है, सिल में यह चक्रीय गति से चलता है। इसी को 'लोढ़ा' (र से ल बनने पर-रोड़ा/रोदा) कहा जाता है। ये सभी ध्वनियाँ उपरोक्त कुमांउनी एवं रोमांस भाषाओं में विद्यमान हैं।

**कु०** फ्यर भएर/फेरा भएर = फेरे लगाना, फेंटना।
**लैटिन**— fervere - फेरवेरे/फेरभेरे/फ्यर भए रे = गर्म करना, गर्म होना।
**पुर्तगीज**— ferver - फेरविर/फेरभेर/फेर भएर = गर्म करना।
**स्पेनिश**— hervir - हेरविर/हेरभिर/हेर भइर = गर्म करना।
**रूमानियन**— afierbe - अफीरबे/आफीरबे = गर्म करना।

**व्यु०** लै०, पु० फेरा या दौड़ने की क्रिया से सम्बद्ध हैं। दौड़ने से द्रव स्वत: गर्म हो जाता है। स्पे० हेर भइर हेरना या खोजने से सम्बद्ध है। पुराणों में सगर के पुत्रों ने अश्व को विस्तृत खण्ड में खोजा (हेरा) इससे जो ऊष्मा बनी वही कपिल मुनि का क्रोध या शाप कहलाया। ऊष्मा के कारण ही क्रोध उत्पन्न होता है। रूमा० आफीरबे कु० आफर भई का प्रतिरूप है। 'आफर' लोहार की कार्यशाला का नाम है जहाँ लोहा गर्म किया जाता है। दूसरी व्यु०- फ्यर/फेर के फ का प में परिवर्तन से 'पएर' 'पेर' शब्द बनता है, 'पएर' या पयाना 'बटने' की क्रिया है जिसमें ऊष्मा बनती है। रसों का परस्पर संधान भी 'पएर' है जिससे ऊष्मा बनती है।

**व्या०** माँज (= चूल्हा) में पानी रखें। आंच आने से सौं सौं की ध्वनि आती है। पतीली का जल लहरों के रूप में 'फेरे' लगाने लगता है। ये फेरे ऊपर-नीचे (आकाश-पाताल) को नापते हुएं होते हैं। इसी तरह रस्सी को बटें तो उसमें ऊष्मा आ जाती है। विज्ञान के अर्थ में रासायनिक समीकरण बनने की क्रिया और प्रतिक्रिया ही फ्यर और पएर (बटना, निर्माण होना, गर्म होना) है।

**कु०** बौल, बुल्लो = बुलबुला।
ब्वल/बोल, बोल्लु = बोलना।
बौला/बौलीनु = जो बोलता (बड़बड़ाना) रहता है (पागल)/पगलाना।
**लै०** bulliere - बुल्लीरए/ब्वल्लीरे = बुलबुले बनना/उबलना।
**कातालान**— bullir - बुल्लीर/ब्वलीर = गर्म होना।

**ओक्सीटान**– boule - बोले/बोउले = गर्म होना, गर्म करना।
**फ्रैन्च** – bouillir - ब्वौइली/ब्वौइल्लीर = गर्म होना, करना।
**व्यु०** उपरोक्त सभी शब्द बुल्लो/ब्वल (बुल्ल के फूटने से उत्पन्न ध्वनि = बोलना) से व्युत्पन्न है। हिन्दी का 'बोलना' सहित उक्त रोमांस शब्दों की व्यु० कुमाउनी ब्वल, बौला के बिना सम्भव नहीं है।
**व्या०** पतीली का पानी गर्म होने पर बुलबुले छोड़ता है। वे फटते हैं उनसे ध्वनि निकलती है। अन्त में पानी पूरी तरह उबलने लगता है। बुल्ले (बुलबुले) फूटते रहते हैं और पानी लगातार बुदबुदाता रहता है इसी स्थिति के कारण अर्ध विक्षिप्त या स्वयं से बात करते रहने वाले व्यक्ति को कु० में 'बौला' कहा गया है। जिस प्रकार उबलती दाल उफान लेकर बेतहासा भागती है उसी प्रकार का अनियमित व्यवहार 'बौला' भी करता है। अं० का boil 'बौइल' शब्द भी इसी 'ब्वल' से सम्बद्ध है। 'बुल्ल' 'ब्वल्ल' के परीक्षण-निरीक्षण से यह अनुमान हो जाता है कि पानी गर्म हो रहा है। इसी आधार पर 'बुल्ल' और 'ब्वल्ल' से गर्म करना या गर्म होना अर्थ निकाला गया है। फेरनु/फिरनु/फेरीनु तथा बुल्ल/ब्वल को हम बंगला की 'बाउल' परंपरा में पाते हैं जो फिरते हुए ब्वलते (बोलते, गाते) रहते हैं।

---

## कुमाउनी : फ्रैंच

**कु०** चिभल/चिफल/चिफलो = फिसलन, काई, काई के कारण उत्पन्न फिसलन।
**फ्रैं०** cheval- शेवल = घोड़ा। **व्यु०** चिवल/चिफल/चिभल (कु०), शैवाल (सं०), श को ख में विकल्प करने से खेवाल (= खेने वाला) तथा श को च में विकल्प करने से 'चिवल' शब्द बनता है। इसका लोक प्रचलित नाम 'शेवार' भी है।
**व्या०** फ्रैंच में व फ में परिवर्तित हो जाता है या व का फ उच्चारण होता है। कु० में व फ और ब (भ) तीनों उच्चारण विद्यमान हैं। तुलनात्मक भाषा शास्त्री अश्व (सं०), हिप्पोस (ग्री०), शेवल (फ्रैं०), घोटक (सं०), कुदिरै (त०); गुर्रा, गुर्रम (ते०) आदि की तुलना करते थकते नहीं हैं, परन्तु वे अभी तक यह बता पाने में असमर्थ है कि क्यों भिन्न-भिन्न भाषाओं में इनके भिन्न नाम है।

शरीर में घोड़े का कार्य काई/चिफल/शिफल या चिभल से सम्पन्न होता है। जिन द्रव्यों से मूल शैवाल बनती है उन्हीं की अश्व में भी बहुतायत होती है। जलाश्व (दरियायी घोड़ा) शैवाल पर ही जीवित रहता है। काई या शैवाल के अस्तित्व में आते ही ऊष्मा बनने की क्रिया प्रारंभ हो जाती है। इसी अर्थ में अश्व की पुराणों में सूर्य के घोड़ों के रूप में कल्पना की गई है। विकास की गति का वाहक आदि काल से (जीवितों के सन्दर्भ में) शैवाल या चिभल, चिफल तत्त्व

है। अत: फ्रैं० में घोड़े का रूढ़ नाम 'शेवल' हो गया है। इससे यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि 'फ्रैंच' भाषा संस्कृत या कुमाउनी से भिन्न है, शैवाल, चिभल, चिफल सं० एवं कु० में विद्यमान हैं परन्तु उनका रूढ़ अर्थ फ़ाई और फिसलन के रूप में लिया गया है।

**कु०** दुन्योर/दुन्योर/दुन्नेर = दुहराना, दो बार देना, दोनों ओर से देना।
**फ्रैं०** donner- दॉने/ दोन्ने (र) = देना।
**व्यु०** दून (गोरस कु०) + नए (र) = देना या नावन कर देना। दुनु (दुगुना/दो बार कु०) + नीर (जल) = दो बार जल या कोई वस्तु दे दी जाय तो वही देना अर्थ होता है।
**व्या०** फ्रैं० 'दोन्ने' = देना को परंपरा के बिना समझना कठिन है। फ्रांस में ऐसी परंपराएं हैं यह ज्ञात नहीं है। भारत में किसी रूप में ये परंपराएँ बची हुई हैं जिनसे हम शब्द के जन्म और अर्थ की व्युत्पत्ति ज्ञात कर सकते हैं। कुमांऊ सहित सम्पूर्ण भारत में यह परंपरा है कि जब किसी को कोई वस्तु दी जाती है, तो अति अल्प मात्रा में या मुट्ठी भर वस्तु पुन: दी जाती है। इसी को दुहराना, दो बार देना (कु० दुन्योर/दुन्नेर) कहा जाता है। फ्रैं० में अन्तिम शब्द 'र' उच्चरित नहीं होता है परन्तु लिखा जाता है जिससे इसके मूल को जाना जा सके।

विज्ञान के अन्तर्गत मुंह में अन्न आता है तो 'दून' गोरस अर्थात् लार का नावन (बहना) स्वत: हो जाता है। जब ग्रास दिये गये रस से परिपूर्ण हो जाता है तो आगे बढ़ने के लिए अतिरिक्त दून, गोरस या नीर (जल जो नावन करता है) की आवश्यकता होती है, ज्यों ही दोनों जबड़ों का एक साथ दाब पड़ता है तो अतिरिक्त नीर आता है और ग्रास आगे को चला जाता है। यही दुहराना या दो बार देना है इसी से दोन्ने (र) शब्द बनता है। दोनों जबड़े हाथ के 'प्रतीक' है, अत: देने के लिये दोनों हाथ से पकड़कर देने की परंपरा है। अर्थात् दोहरे हाथ के दबाव से जो द्रव रिसे वह भी देना या दोन्ने है। परंपरा में 'दोना' दो पत्तों के योग से बनने वाली कटोरी होती है। इसमें रखकर जो दिया जाय वह भी दोन्ने या दओन्नए है। पौराणिक कथा के अनुसार कुन्ती ने 'दोने' में रखकर ही गंगा को 'दोन्ने' किया था (दिया था) {काशी में 'दोन्ने' (दोबार देने की प्रथा) को 'घलुवा' कहा जाता है। 'घेल' का अर्थ घेलना या ठेलना या बहाना (जाने के अर्थ में) है। मूल में यह 'गएलुआ' (= जिससे जाया जाय) है।}

**कु०** तब्ला/ताब्लो = तबला।
तऽ बल = तऽ = ताव् (तवा) का बलना (गर्म होना) अथवा तवा में उत्पन्न बल (शक्ति)। कु० में तऽ, तै का अर्थ कढ़ाही भी होता है। मूल रूप में दोनों में कोई अन्तर नहीं है।
**फ्रैं०** table - ताब्ल = मेज।

व्यु० ता = तवा (अमूर्त में ताव/ऊष्मा) का बल अथवा ऊष्मा जो बलइ (बलती) है। तवे में इस 'बल' पर अन्न आदि रखा जाता है, पकता है या उसी पर खाया जाता है। अत: फ्रैंच में इसको मेज अर्थ में रूढ़ कर लिया गया है। कु० तब्ला हि० तबला इसलिए है कि यह शरीर में पेट है जिसे बजाकर ही भोजन उपलब्ध होता है, वह छनकर रक्त में मिलता है।

व्या० महाभारत में एक कथा है जिसमें ऋषि का कथन है कि अंजुली ही मेरी थाली है, हाथ ही मेरा तकिया है.....आदि। अत: वैदिक/पौराणिक मेज पर जब पकाया जाता है तो वह मेज का कार्य करती है, जब उसे बजाया जाता है तबला बन जाती है। जब ऊष्मा दी जाती है तो वही तवा या कढ़ाही बन जाती है। लोक प्रचलन में इनमें से जो भी नाम जिस वस्तु के लिये प्रयोग करें वही रूढ़ हो जाता है, और उसका अन्य अर्थ छोड़ दिया जाता है। यदि फ्रांस में कोई ताब्ल को 'तबला' कहे तो सभी आश्चर्य की तरह देखेंगे और हंसेंगे। इसी तरह भारत में ताब्ल या तबला या तवा का अर्थ कोई मेज कहे तो लोग उस पर हंसेगे। आप दूसरे पर हंसें, दूसरे आप पर हसें; परन्तु पुराण इसे 'अज्ञान' ही कहते हैं। ऐसे लोगों को 'कीलित' बुद्धि का मानते हैं। इन्हें 'पाखण्डी' अर्थात् सम्पूर्ण के एक खण्ड को ही अंतिम सत्य मानने वाला कहते हैं। इसी अर्थ में जो अपनी अपनी भाषा, अपनी सभ्यता, अपने देश, अपनी संस्कृति, अपने धर्म को ही एक मात्र सत्य कहता है तो उसे भी पुराणों ने 'पाखण्डी' का नाम दिया है। फ्रैंच के समान ही सभी अक्षर अंग्रेजी table में भी हैं परन्तु उच्चारण भिन्न है– 'टेबल'। इस की व्युत्पत्ति 'ता + बलई/या ता + बल से की जायेगी, यह स्थिति "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी" की है। इससे भारतीय सिद्धान्त (दर्शन) की पुष्टि होती है कि सृष्टि का प्रस्फुटन या विकास और नामकरण यथार्थ में मानसिक वृत्तियों (मन) का ही विकास है।

कु० मल, मैल = गन्दा, बुरा।
फ्रैं० mal - माल् = बुरा। व्यु० मयाल — मय+आल = माल। मअ + अल = माल (मयाल) अर्थात् रासायनिक क्रिया (मय/मअ) से उत्पन्न विकार ही माल्, मल या मैल है।

कु० बेड़ि/बेड़ी = बंधन, परवश, नियंत्रण, कारागार, जंजीर।
बेरि = बेर, मिठास एवं कांटे/सुख एवं दुख:।
फ्रैं० verite - वेरित/वेरिते = सत्य।
व्यु० बेरि + तए = बेर जैसा तथा बेड़ि + तए = बेड़ियों जैसा।
व्या० यही 'सत्य' है, बुद्ध का 'सर्वं दुखं दुखं' ही बेड़िते, बेरिते (कु०, फ्रैं०) है। इसी सत्य को गीता में "सुख-दुखे समेकृत्वा" (सुख-दुख में जो सम रहे) कहकर जीने की कला या योग के रहस्य को बताया गया है। दूसरे शब्दों में 'बेर की

तरह मिठास और कांटों का चक्र ही सत्य है।

कु० पै द = (i) पै (पैर) + द (देना) = गति देना, दबाव देना, भार।
(ii) पै (पएइ, पैनि = रस्सी बटने के लिये दिया गया बल) + द = देना।
(iii) पएड़ = पई करने वाले, ऐड़ देने वाले, ऐंठने वाले।

फ्रैं० pied - पिए/पए/पइए (द) = पैर, आधार।

व्या० पैर गति, दबाव, बल आदि की क्रिया करते हैं। व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिवान करते हैं। पैर से गीली मिट्टी दबती है तो जल गतिशील होकर अलग हो जाता है। अत: वे बल के प्रतीक भी है। पुराणों में इसी आधार पर जल स्रोतों को विष्णु के पंजों से नि:सृत कहा गया है शरीर ब्रह्माण्ड में पैरों के दबाव से सम्पूर्ण रसों का दोहन किया जाता है। इसमें पै, पैनि, पयूनु, पईनु, पए आदि शब्दों की क्रिया से उत्पन्न 'बटने', निचोड़ने, ऐंठने की क्रिया से रसों का आवागमन होता है। अत: पए/पइए/पएड़ का अर्थ पैर होता है क्योंकि पैर इन क्रियाओं को करता है। चूंकि इसी क्रिया से जल बहता है तथा दूसरा पक्ष उसे ग्रहण करता है अत: थोड़े से अन्तर से पईनउ (पै करने से उत्पन्न नावन) से पिनु (कु०) तथा पीना (हिन्दी) बनता है।

कु० साल/साल्ली = साल का वृक्ष/जिससे निर्माण किया जाय, अथवा सालने की क्रिया की जाय। (सालने में कूटना, पीसना, फटकना, बीनना सभी क्रियायें सम्मिलित हैं।

छाल/छालि/छाल्ली = वृक्षों की छाल अथवा छाला (मृग)।

फ्रैं० salle - साल्/साल् (ली, ले) = भवन। व्या० पुराण कथाओं में साल वृक्षों, उससे निकले रसों का वर्णन मिलता है। यहाँ साल लकड़ी भी है तथा साल का रस भी है। जिसे 'राल' तथा महाभारत में लाक्षा (लाख) कहा गया है। कौरवों ने पाण्डवों के लिए लाक्षा भवन ही बनाया था, 'राल' थूक का नाम भी है। एस्किमों 'छाल' के भवनों में ही रहते हैं। यह 'छाला' (चर्म) सभी क्रियायें शरीर में करती है (साल्ली का कार्य– जैसे सूप, चलनी आदि का)। कु० में 'सल्ल' चीड़ का नाम है, इसमें (साल) 'लाक्षा' के सभी गुण हैं। 'सल्ल' को साल कर भी 'साल्ली' या 'साल्लो' = भवन बनाया जाता है।

कु० फिन्/फिनि/फिज/फिजाल्नु = चटाई, फैलाना/ छोटी चटाई/फैलाना/फैलाना/ फिन्यूनु/फिनीगौछ = फैलाना। फैलाने की क्रिया का पूर्ण हो जाना अर्थात् समाप्ति।

फ्रैं० fin/fini - फाँ/फिनी = समाप्ति, अन्त, पूर्ण होना, निष्कर्ष तक पहुंचना।

व्या० यहाँ पर फिनी (चटाई) की क्रिया से शब्द का अर्थ ग्रहण किया गया है। कु० 'फिनि' के बिना फ्रैंच 'फिनि' की व्यु० सम्भव नहीं है।

कु० बूटी/भोट्टि = जड़ी बूटी/रुई की पतली गद्दी।

फ्रैं० botte- बॉत्। बोत् = जूता। व्या० पुराणों में पैर में जड़ी बूटी का रस लगाकर

अग्नि में चलने, कालीन या रूई के बिस्तर (कु० भोट्टि) में खड़े होकर उड़ने, चलने आदि भी कथाएँ मिलती हैं। यहाँ पर भी भोट्टि (ब्वटि) का अर्थ पलाश (सेंमल) का रस ही है जिससे रुई बनती है तथा स्वयं एक बूटी भी है। इसी को पौराणिक व्यक्ति पैरों में लगा (पहनना, चिपकाना) कर चलने का कार्य करते हैं। भोजपुरी में एक लोकोक्ति है "मुंह पान भी खाता है पई (जूता) भी।" यह 'पई' श्लेश्म या लार ही है जो सूखकर चर्म बन जाता है तथा शरीर में फिसलन लाकर सभी को चलाता है।

**कु०** ग्वेरानु/गुर्रानु/गुर्रा = पत्थर लुढ़काना/गुर्राना/गांठ ऐंठना (लगाना)।
**फ्रैं०** guerre - गेअर/गेर/ग्वेर्रे = युद्ध, संघर्ष, खींचतान, प्रतिद्वंदिता, प्रतिस्पर्धा।
**व्या०** ग्वेरनु, ग्वेरानु 'वैदिक गायों' की आने जाने की क्रिया है। रस्सी खींच का खेल यही ग्वेर का गेअर है। पत्थर चलाना भी प्राचीन काल के युद्धास्त्र थे। अत: कुमाउनी 'ग्वेरानु' भी युद्ध ही है। फ्रैं० गेअर की व्यु० है गुएर (गउएर)+रए = गउओं के रहने के लिए अथवा गउओं के लिये। महाभारत पढ़ते है तो 'गोहरण' के लिये ही कौरवों ने युद्ध किया था। अत: 'ग्वेर्रे' (फ्रैं० शब्दों का कु० उच्चारण) तथा फ्रैं० गेअर/गेर का अर्थ युद्ध या प्रतिद्वन्दिता है। 'गेर' उच्चारण से कु० में 'गिरना' गिराना, लुढ़काना, फेंकना अर्थ लिया जाता है, इस रूप में भी यह युद्ध का ही प्रकार है। मल्लयुद्ध (कुश्ती) में पैरों को परस्पर फंसाना (लंगड़ी) का नाम ही 'गुर्रा' है। अनेक यूरोपीय भाषाओं में 'गुर्रा' का अर्थ युद्ध है। भले ही शब्दों के उच्चारण में भिन्नता ला दी गई हो।

**कु०** लाई/लावा = धान का लावा।
**फ्रैं०** lait - ले/लै/लॅ/लाई (त) = दूध। **व्या०** महाभारत में दूध के स्वरूप की तुलना पिसे चावल के घोल से दी गयी है। उपमन्यु की माँ ने उसे बचपन में यही घोल दूध कहकर पिलाया था। फ्रैंच में जैसा उच्चारण किया जाय वर्णों के आधार पर इसकी व्यु० है— लाई (त) = जो लाई (चावल) की तरह है तथा जिसे बार-बार 'लाइत' (= लाओं + या लाता हूँ) कहते हैं अथवा जो सबको लाता है वही फ्रैंच ले/लै/लॅ (जिसे दिया जाय अथवा जिसे लिया जाय) है। शरीर में इसे लार कहा जाता है जो सबका संचालन (पालन, पोषण आदि) करता है। योग सम्बन्धी पुस्तकों में इसी का नाम अमृत या दुग्ध है।

**कु०** बातो = दीपक की बत्ती, बाती।
**फ्रैं०** bateau - बातो = नावक, नौका।
**व्यु०** वर्णों के अनुरूप व्युत्पत्ति है बाटेओ (कु०) = बटा हुआ अर्थात् 'बातो' यही उच्चारण की शैली फ्रैंच की भी है।
**व्या०** दीपक की बाती नौका कैसे है? अवश्य सभी का सिर चकरा जायेगा। जिस प्रकार 'बाती' के माध्यम से तेल या घी दिशाओं में जाता है उसी अर्थ में 'बातो'

का अर्थ 'नाव' है। शरीर में अनेक प्रकार की नाव होती हैं। नाव का अर्थ इतना ही है कि वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाती है, वह स्वयं पानी में ही रहती है, उतरता यात्री ही है, यही क्रिया बातो या बाती की है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जिसकी विवेक शक्ति रूढ़ अथवा कीलित हो उसे इस प्रकार के शब्दों के अर्थ लगाने में कठिनाई होती है।

**कु०** पाइ/पाइछ = घुन/बटा हुआ या घुना हुआ।
**फ्रैं०** paysan - पेईजाँ = किसान। **व्यु०** पाइ साँ (पाई जैसा) या पाइ जाँ, (पाई जाता है), पाइ सान/छान (पाई सानता है, मिश्रित करता है/छानता है)।
**व्या०** प्रकृति का पाई (घुन) ही किसान है, उसी की तुलना लोक के किसान से की गई है। घुन, पाई अपने ढंग से लकड़ी, मिट्टी को उपजाऊ बनाता है और मनुष्य रूपी पाई अपने ढंग से।

**कु०** पए/पाएर = जिससे पई/पयाने की क्रिया की जाय/जिससे पाया जाय।
**फ्रैं०** payer- पये/पेये = मूल्य देना, मूल्य, पुरस्कृत करना।
**व्या०** किसी वस्तु को प्राप्त करेने के लिये शरीर में जिन रसायनों को मिश्रित किया जाता है, उन्हें मूल्य कहा जाता है। ये रसायन ही वस्तुओं को 'पचाते' हैं (शरीर में पचाने की क्रिया रासायनिक संपृक्तीकरण (पए बटना, मिश्रित करना) कही जाती है। 'र' का अर्थ करने वाला है। अत: फ्रैं० पये की व्यु० है पए (र) एवं पाए (र) 'र' को उच्चरित न भी किया जाय तो अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

**कु०** लोई/लावा = आटे की लोई, धान का लावा, लाव्।
**फ्रैं०** loi - लोआ/ल्वा/लवा/लोई = विधि, कानून।
**व्या०** फ्रैन्च लोआ या लवा ही कु० लाव् या लावा है। यही 'शरीर राज्य' में विधि के रूप में जाना जाता है, (विस्तृत व्याख्या के लिए देखें– 'भारत के लोगों का संविधान एवं दर्पण' पृष्ठ- 181-185)।

**कु०** बुन/भुन = बुना हुआ या परिपक्व/भूनना या भुना हुआ।
**फ्रैं०** bon - बौं = अच्छा। रसों का परस्पर मिश्रण ही बुनना या भूनना है। फ्रैंच में केवल उच्चारण भिन्नता है।

**कु०** माँज = मांजना (बर्तन धोना), चूल्हे में पकने हेतु रखा बर्तन (पकाने, खाने की पूरी प्रक्रिया)।

**फ्रैं०** manger - माँजे = रखना। **व्या०** जहाँ तक मांजना (धोना, चमकाने) का अर्थ है वह भोजन स्वत: करता है तभी शरीर पुष्ट अर्थात् चमकता है। कुमाउनी माँज ही फ्रैंच माँजे (र) = माँज में रखना, है।

**कु०** फल्यूति = कूटने की क्रिया/फल आने की क्रिया।
**फ्रैं०** flute- फ्ल्युइत् = बाँसुरी। **व्या०** कूटते समय एक ध्वनि विशेष कूटने वाले

के मुंह से निकलती है। वैसे ही जैसे 'बांसुरी' से निकलती है। वायु के कंपन एवं ध्वनि से जैसे वृक्ष में फलन क्रिया होती है, उस काल में सर्वत्र एक सुरीली ध्वनि वर्तमान रहती है। शरीर में भी रेचक, पूरक रूपी सुरों से फलन क्रिया सम्पन्न होती है। पुराणों ने इसे कृष्ण के बांसुरी वादन से इसी अर्थ में जोड़ रखा है।

**कु०** कोयो/कोयूर = बर्तन मांजने की घास (राख इसमें सम्मिलित है)/कोये से बर्तन मांजना, चमकाना, मैल निकालना।

**फ्रॉ०** coeur - केअर/कोयर/कोइयूर = हृदय, खिलना, संवेदना, आत्मा, साहस।
**व्या०** हृदय उन सभी क्रियाओं को सम्पन्न करता है जिन्हें कु० 'कोया' करता है। सं० में इसे 'केयूर' (बाजूबन्द) कहा गया है। लौकिक बाजूबन्द से पौराणिक बाजूबन्द भिन्न होता है। इन्हें हम शिव, गणेश या कार्तिकेय भी कथाओं में सर्पों के बाजूबन्द पहनने के रूप में जानते हैं।

**कु०** आग्-तात्योर/आगइ (आगि) तात्योर = आग से गर्म या उबाला हुआ, अग्नि से उबाल आना/आग से उबलता हुआ।
**फ्रॉ०** agitateur - एजीतात्योर/आगी तातेउर/आगइ तात्योर = तनाव या उत्पात करने वाला, उत्तेजना, अशांति।
**व्या०** ये क्रियायें अग्नि द्वारा होती हैं, व्यु० की आवश्यकता नहीं।

**कु०** अग्नेओ/अग्नेवा = आग से सम्पृक्त, पका हुआ अथवा आग लगाना।
**फ्रॉ०** agneau - अग्नो/अग्नौ/अग्नेआइउ = भेड़ा, भेड़।
**व्या०** सामान्य अवस्था के जो रसायन होते हैं उनमें धनात्मक गुण नहीं होते हैं। ऊष्मित होने से वे ऊष्मा को सोखते हैं, साथ ही भेड़ की तरह के घुंघराले तंतुओं (रोम) के रूप में संघनित होकर धनात्मक (विद्युत के अर्थ में) रूप ग्रहण कर ऊष्मा युक्त हो जाते हैं इसीलिए अग्नि का वाहन पुराणों ने भेड़े को बनाया है। ये रोम ही विद्युत या अग्नि का संचरण करते हैं। भेड़ के झुण्ड के रूप में बादलों में भी यही आवेशण क्रिया सम्पन्न होती है, दो ध्रुव बनने की क्रिया। अत: जिसमें अग्नि का वास हो वही अग् + नेओइ (अग्नो) = 'अग्न्याउइ' (भेड़ा) है।

**कु०** अल्जु/अल्ज्वा = जो उलझाये/उलझाने वाला।
अल्गु/अल्गवा = जो अलग करे/अलग करने वाला।
**फ्रॉ०** algue - अल्ग/ऐल्ग/अल्गइउ (इ) = काई, सिवार, शैवाल। विशेष : देखें पृ०- 51 अं० ऐल्गी।

**कु०** न तर/ना तरे = नहीं तैरता है, नहीं जाता है।
**फ्रॉ०** notre - नोत्र्/नउ तरे = हमारा। **व्या०** जो उस पार न जाय वह अपना है।

**कु०** भओ तरे = जो तैर गया हो, तैर कर उस पार चला गया है।

फ्रैं० votre - वॉत्र्/भओ तरे = आपका। व्या० जो उस पार (आपकी ओर) आ जाय वह आपका है।

कु० मएर कइ/मएर सि = 'मै' करना, संकट से उबारना (यातायात व्यवस्थित करना, भाव है आपने 'मै' कर दी है संकट से उबार दिया, है आभारी हूँ।
फ्रैं० merci - मॅअर्सी = धन्यवाद।

कु० बाछी = गाय का बच्चा, गाय।
फ्रैं० vache - वाश् = गाय। व्या० यह वाश कु० बास है, सं० में इसे गन्ध कहा गया है जो रासायनिक क्रिया के सम्पन्न होने का प्रारंभ है। इसी का स्थूल प्रतीक 'गाय' है। सं० में गो = पृथ्वी भी है, जिसका गुण गन्ध है, इस अर्थ में 'वास' रहने का स्थान भी एक अर्थ है। कु० बाछी का फ्रैंच उच्चारण 'वाश्' है।

कु० झूर = सूखा अथवा फुहार।
फ्रैं० jour - जूर = दिन। व्या० पौराणिकों का दिन श्रम का समय होता है, उसमें भोजन नहीं मिलता है अत: 'झूर' कहा जाता है। उनका दिन यथार्थ में मनुष्यों की रात होती है, इसी में उन्हें रस रूप में भोजन मिलता है अत: इसे भी 'झूर' (फुहार, वर्षा) कहा जाता है। पुराणों में अनके स्थानों पर यह कथन मिलता है कि मनुष्यों का दिन देवों की रात होती है। जूर/झूर की व्यु० है– 'जओइउर' जिसमें केवल जाना है इस जाने से व्यक्ति झुरा (थकान, सूखापन) जाता है, अत: यह 'झूर' (दिन) का काल है। दूसरे अर्थ के लिए 'जवौर' उच्चारण है जो जाने के लिये सामग्री लेने (खाने) का अर्थ देता है। यही जवौर/झवोर 'झोर' (झोरना, ठूंस–ठूंस कर खाना) हो जाता है अत: इस काल का नाम भी 'झूर' है। अत: प्रकरण के अनुरूप कुमाउनी में इसका अर्थ लगा लिया जाता है।

कु० कुइ/कु = कौन। कि = क्या।
फ्रैं० qui - की = कौन।

कु० सौल/सौलेइल = साही/साही के कांटों की तरह चुभना।
फ्रैं० soleil - सॉलॅय् = सूर्य। व्या० वर्णों के आधार पर कु० आब् सौल्यूत पृ० 49 देखें तथा उच्चारण के आधार पर 'सॉलॅय' का अर्थ है जो सालता (निर्माण) करता है अथवा टीसता है/उत्प्रेरित करता है। सूर्य के ये दोनों कार्य हैं।

कु० छिया = नाक, लार बहना।
फ्रैं० chien = शियाँ = कुत्ता। व्या० लार का पौराणिक नाम कुत्ता/श्वान ही है।

कु० साट्यो = सटाया हुआ, सिला हुआ, (चाहे मकान हो या अन्य कुछ)।
फ्रैं० chateau - शातो/साटेओ > छातेऔ = महल। व्या० प्राचीन समय में सांट-सांट कर मिट्टी के महल या झोपड़ी बनती थी, दीवालों का लीपना भी सटाना

(चिपकाना) है। अन्य व्युत्पत्तियाँ है– छातो (मंडप) तथा छाट्यो (छांटना, हटाना, स्थान खाली करना)। पौराणिक भवनों में ये सभी व्युत्पत्तियाँ लागू होती हैं।

कु० फरुइ = चावल का फरा दाना (भोजपुरी में 'फरुई' = भुना दाना)।
फ्रैं० fruit - फ्रुइ = फल। व्या० 'फरना' 'फलना' फलन प्रक्रिया का नाम है, हम इसे कहीं पर भी लगायें यह हम पर निर्भर है। फ्रैं० उच्चरित 'फ्रुइ' की व्युत्पत्ति है– फर + उइ = फलन + ऊष्मा = ऊष्मा द्वारा परिपक्व होना। वृक्ष में उसकी आन्तरिक रासायनिक क्रिया से उत्पन्न ताप को ही ऊष्मा कहा जाता है।

कु० भिन्/भिनक = गंध, भीनी गंध/भिनक गंध, दुर्गन्ध दोनों के लिये प्रयुक्त होता है।
फ्रैं० vin - वाँ/वैं = शराब, मद्य। व्या० भिन् (विन्) की व्यु० कुमाउनी में देखें। फ्रैंच उच्चारण 'वैं' कु० 'भैं' है, इसका अर्थ पृथ्वी है। पृथ्वी का गुण गन्ध है, अत: गंध के आधार पर शराब को 'वैं' कहा गया है।

कु० परइन्धर (इ) = परई या थाली में रखना (भो०पु० में भी)।
फ्रैं० prendre - प्रान्द्र = लेना, प्राप्त करना। व्या० फ्रैंच वर्ण आधारित व्यु० कुमांउनी में दी गई है। इसे धरे या दरे (दरना या खाना) अर्थ में प्रयुक्त किया जा सकता है। उच्चरित शब्द 'प्रान्द्र' की व्यु० है। (i) प्रानधर = प्राण का धारण करना। पुराण अन्न को ही जीव का आधार बताते हैं। (ii) फरान दर = फरे हुए को दरना या खाना (लेना)।
निम्नलिखित फ्रैंच शब्दों की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या "भारत के लोगों का संविधान एवं दर्पण" नामक पुस्तक में दी गई है– seculer (सेकुलेर) पृ० 103, parlement (पार्लेमाँ) पृ० 107 ए एवं liberti (लिबेर्त) पृ० 110।

---

## कुमाउनी : स्पेनिश

कु० ढेर कया/ढेरका = ढेर बनाना, अवरोध।
cerca- थेरका/ढेरका = निकट।
व्या० स्पेनिश में e के पूर्व c का उच्चारण थ (th) किया जाता है। कु० में थ के स्थान पर ढ है। 'थक्का' या 'ढेर' दोनों का अर्थ निकट आना या रखना है, यही ढेर अवरोध भी बन जाता है।

कु० उएर फानो = फाना का उवा (फटका) हुआ भाग, विकार;
स्पे० huerfano - उएरफानो/(werfano) वेरफानो = अनाथ। 'h' का उच्चारण नहीं होता है।

व्या० 'फाना' (एक भोजन) में उत्पन्न विकार को कोई संरक्षण नहीं देता है, इसी अर्थ में उसे अनाथ कहा गया है।

कु० परो हइ भए = दूर ही रहो, परे रहो।
स्पे० prohive/prohibe- प्रोहिवे-बे/परोइ (हि) भए (बहे) = नहीं/यहाँ नहीं।
व्यु० स्पे० प्रोहिवे/प्रोहिबे कु० के तीन शब्दों के योग से बना है। जो सम्बन्धित स्थान से दूर रहने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

कु० परई बाड़ो/पराइ बाड़ो = भोजन का स्थान/दूसरे का बाड़ा।
परिबाड़ो = घेरा हुआ बाड़ा, स्थान।
स्पे० privado - प्रीवाडो (दो) = व्यक्तिगत।
व्यु० भो०पु०, कु० आदि में 'परई' = मिट्टी की थाली को कहते हैं, इसका सम्बन्ध भोजन से है। पुराणों में भोजन शांत एवं एकान्त में किये जाने के निर्देश दिये रहते हैं। परई का सम्बन्ध भोजन गृह से भी है। इसे भी बाड़े (सुरक्षित स्थान) में बनाने के निर्देश या कथानक पुराणों में मिलते हैं। परई ही स्पेनिश में प्री तथा बाडो (= बाड़ा = घेरा) ही एकान्त, व्यक्तिगत या सुरक्षित स्थल के अर्थ में रूढ़ हो गया है, बंगला में 'बाड़ी' घर के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कु० उम/उमो = ऊष्मित अन्न (विशेषत: गेहूँ या चावल)।
स्पे० humo - उमो = धुआं, 'ह' उच्चारण विहीन है।
व्या० यदि ह का उच्चारण करें तो 'हुमो' या 'होमो' अथवा हवमओ उच्चारण होते है। इसका अर्थ है होम से बना धुआं या वायु से संपृक्त जल (वाष्प) अथवा कार्बनडाइआक्साइड या आक्सीकृत द्रव्य।

कु० उमस = वर्षा काल में धूप के कारण उत्पन्न उमस।
स्पे० humoso - उमोसो = धुआं युक्त, धुआँसा, उमस युक्त।
व्यु० स्पे० उमोसो कु०, भो०पु० हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं की 'उमस' है। 'ह' उच्चरित होने से इसकी व्यु० इस प्रकार बनती है-हव मओ सो = हवा द्वारा या हवा में उत्पन्न कुहासा अथवा होमोसो = होम से उत्पन्न कुहासा।

कु० माहू/आ हव मयार = गेहूँ, सरसों की फसल का रोग/हवा से सुखाना।
स्पे० ahumar - आहूमार/आ हव मयार = धुएं द्वारा भोजन को सुरक्षित करना या धुआं।

कु० फूक मार/फू मार = फूक मारना या आग जलाना।
स्पे० fumar - फू मार/फ्यूमार = धुआँ देना, धुआँ करना।
व्यु० फू = फूकना, मार = मारना (देना)। मयार अर्थात् फू से शरीर में 'मै' (= सम्प्रसारण) की क्रिया होती है। जिससे मयाने (पोषण) की क्रिया होती है। यह धुंआ रेचक व पूरक दोनों के कारण बनता है।

कु० काई = शैवाल।
स्पे० calle - कायी/काई/= गली का रास्ता।
व्यु० यह शब्द पुरानी स्पेनिश का है, ll (ल्ल) का उच्चारण य किया जाता है। शरीर में काई या फिसलन बिछ जाने पर ही द्रव बहता है। यह सरकता है यही पथ या गली है।

कु० बुका, बुकूनु = खाना या दांत से काटना, चबाना।
ब्वक, बोक्, बोक्नु = ले जाना, भार उठाना, भार पहुँचाना।
स्पे० boca - बोका = मुंह।
व्यु० बओ + कआ > बहो कया = बहाने, ले जाने (ब्वक)/चवाने (बुकूनु) की क्रिया को संम्पन्न करने वाला। कु० बुका (खाना) की व्युत्पत्ति है- बउ (बहउ) + कआ = जिस क्रिया से किसी को बहने योग्य बनाया जाय या सरकने योग्य बनाया जाय।

कु० घाँटी = गले का घाट।
स्पे० gato - गाटो = बिल्ली।
व्यु० (i) जयातो = जिससे जाया जाय (ग का ज उच्चारण करने पर)।
(ii) गॉठो (कु०) = गांठ, ग्रन्थि, दबाव बनाने का साधन।
(iii) जातो (जाँतो) = चक्की, जिसकी क्रिया से द्रव्य (आटा) आगे को सरकता है।
व्या० उक्त सभी क्रियायें घाँटी (गले की घण्टी) में होती हैं। जिस प्रकार जाँत चारों ओर को प्रसार करता है उसी प्रकार बिल्ली की आंखें भी क्रिया करती हैं। बिल्ली वर्ग के पशु घाँटी पर ही सर्वप्रथम आक्रमण करते हैं। घाँटी वैसे ही ग्रास निगल लेती है जैसे बिल्ली निगलती है। जब 'गाठो' कहेगें तो इसकी सरकने वाले गांठ से तुलना करते हैं, जो बल्ली की तरह दुबक कर छोटा हो जाता है तथा आक्रमण के समय स्वयं को फुलाकर बिल्ली की तरह वृहद्काय बना लेता है। आदि आदि।

कु० लाजो/लावो, लाव् = लावा (धान का)।
स्पे० lago - लावो = झील।
व्यु० 'go' का उच्चारण गो होना चाहिये था परन्तु इसे 'लावो' उच्चरित किया जाता है। ग का परिवर्तन ज में हो जाता है। 'लाजो' शरीरस्थ लाजा या लावा है। पृथ्वी में ज्वालामुखी से निकले 'द्रव' को भी इसी अर्थ में 'लावा' कहा जाता है, जो प्रथम चरण में एक झील का रूप ग्रहण कर लेता है। 'लावो' की व्यु० है लवा ओ या लावाओ = लवाया हुआ द्रव्य। झील का सांकेतिक अर्थ आधिक्य से है।

कु० देशउसार् = अन्यत्र (दिशाओं) को सारना, हटाना, ले जाना।
स्पे० deshuesar - देशुएसार, देशुईसार = हड्डियां या गड्ढों को हटाना।

व्यु० (i) देशउए = अन्य देश को + सार = ले जाना, देना।
(ii) दिशउए = दिशाओं को + सार = सारना, देना।
(iii) दिश/देश = दिशाओं और देशों को + उए = निर्मित, उवाया हुआ + सार = देना।

व्या० पौराणिक शरीर की हड्डिया, मानव हड्डियाँ, मानव हड्डियों से भिन्न होती हैं। जैसे दधीचि की हड्डियाँ जिनको सारने (हटाने) का कार्य इन्द्र ने किया था।

कु० कोर्, कोरनु, क्वरनु = कोरना, काटना।
स्पे० corto - कोर्तो/क्वरतो = काटना। व्या० यह 'कोरना' ही है, इसी से काटना अर्थ किया गया है। 'कोरना' भी काटने का एक प्रकार है।

---

## कुमाउनी : इटालियन

कु० पानी = जल
इ० pane- पानी/पाने = रोटी। व्यु० पया + नए = जो बटे और नावन करे।
व्या० पानी (शरीर में द्रव रूप होने से) पुराणों में अनेक स्थलों में जल और अन्न में कोई भेद नहीं किया गया है। जिस प्रकार सभी द्रव्य जल में पआ > 'पया' अथवा 'बट' (घुल) जाते हैं उसी प्रकार शरीर में "पयाने" वाले द्रव्य का नाम पानी या पाने है। रूढ़ या परंपरा में हम उसे रोटी या चावल या दाल किसी को भी 'पानी' नाम से संबोधित कर सकते हैं। सं० में अन्नाद को 'दण्ड' भी कहा गया है। जिस प्रकार दण्ड को आधार बना कर वस्त्र बुनते हैं उसी प्रकार भोजन रूपी दण्ड से शरीर रूपी वस्त्र को बटते, पयाते या विकसित करते हैं। इसी अर्थ में दण्ड का एक प्रकार 'दाम' (द्रव्य) भी है। यही स्थिति पानी (रोटी) की है।

कु० पियो भए = पीने की क्रिया का संपन्न होना या पीने की वस्तु का होना।
इ० piove - पिओवे/पिवो भए = बरसना।
व्यु० पइओ (= पिओ) + वई (= वही, बहना) = जिसमें घुलाने और बहने का गुण हो उसका होना, आना।
व्या० शरीर में किसी तरह के दबाव से जल निकलता है (जैसे लार) इसे बहना, निचोड़ना आदि अनेक नाम लोक में दिये गये हैं। जो दबाव देता है उसी के लिए जल बरसता है, वही इसे पीता है। अत: इस क्रिया को चाहे आप 'बरसने' के अर्थ में रूढ़ बना लें अथवा पीने के लिये रूढ़ बना लें। क्रिया एक है उसे अभ्यास द्वारा एक निश्चित अर्थ के लिए लोक में प्रयुक्त किया जाता है।

कु० गुफ्फो = एक घास विशेष जिसे सुखाकर चकमक पत्थर के बीच रगड़ने से

आग पकड़ लेती है। इसके अतिरिक्त यह अन्य किसी कार्य में नहीं आता है।
इ० gof-fo = गोफ्फो/गुफ्फो = गुणहीन, व्यर्थ, भद्दा, मूर्ख।

कु० काढ़ना = बटोर कर फेंक देना।
इ० cad-de - काड्डे/काडे (काढ़े) = गिरना।
व्यु० काढ़ दे/खाड़ दे/ शरीर में अगला चरण गर्त या खड्ड (खाड़) का होता है, वहाँ विकास की गति उल्टी होती है इसी अर्थ में काढ़ दे/खाड़ दे का अर्थ गिरना होता है। पुराणों में 'पतन' इसी अर्थ में लिया गया है।

कु० बेलो/बेल्लो = बेल, कटोरी, बेला हुआ।
इ० bel-lo - बेल्लो = सुन्दर। व्या० भरी हुई कटोरी ही सुन्दर लगती है। वृक्ष की शाखाओं में यही बेल रूप कटोरी रसों को पहुंचाती है। बाहरी बेल भी लिफ्ट कर वृक्ष पर चढ़ती है और सुन्दर फूलों से युक्त होती है अत: इसका अर्थ 'सुन्दर' (जो अच्छा लगे, सुखद हो) होता है।

कु० पोइता/पोइया=पकवान बनाने वाला, रसोइया (पोना/प्वेनु= भूनना या पकाना।)
इ० poeta पोइता/पोएता = कवि।
व्यु० पवोइ - जो पवइ (पवन द्वारा) श्वास, प्रश्वास की ऊष्मा से निर्माण करता है, अथवा प (पवन) के संचरण (ओइ) से निर्माण करता है। वही पओइता = पोइता = पकाने वाला है। इस अर्थ में अनेकानेक व्यंजनों, जिसमें सभी 'रस' होते हैं का निर्माता ही 'पोइता' है।
व्या० प्राणी शरीर में भिन्न रंगों, रसों की मणियाँ का निर्माता ही कवि है। मणि इसलिये कि इन्हें 'पो' (गूंथ) कर माला (आगे का विकास) बनती है यह कार्य कवि ही करता है अथवा रसोइया। पवन निर्माण और संगीत (सं० साम गान) की दोनों क्रियाएँ एक साथ करता है। इटालियन में इसी क्रिया का एक अर्थ 'कवि' ले लिया गया है।

कु० लौरिया/लौरिऊनु/लौर्यूनु/लौर लगूनु = बछड़े को हल चलाने के पूर्व का अभ्यास कराना, सिखाना। बैल को हल चलाने की सम्पूर्ण कला सिखाना।
इ० laurea - लौरिया/लौरेया/लॉरेआ = विश्वविद्यालय की डिग्री।
व्यु० लौर = पंक्ति + ईआ = करना या चलना अर्थात् पंक्ति बद्ध होकर चलना, अनुशासन बद्ध होना, सीखना। लौर या लोर = लहर या तरंग भी है। इस अर्थ में सृष्टि चक्र के साथ तारतम्य बनाकर चलने की विधा ही डिग्री या शास्त्र में पारंगत होना है। चाहे बैल इसे सीखे या मनुष्य, क्रिया में कोई भेद नहीं है। भेद केवल लोक प्रचलन का है। अं० का laureate (लॉरिएट) = सम्मानित विद्वान या संस्कारित व्यक्ति भी कु० लौर/लौरयून से व्युत्पन्न हो जाता है। बोलचाल की भाषा में इसे लौरेय्या (= जिसने गति, लहर के साथ तारतम्य स्थापित

कर लिया हो अर्थात् जो विद्वान हो गया हो) कहा जाता है।

क्र० व्यल लेइ (ता) = व्यल (कटोरी=खाना) लेने की इच्छा।
व्यललिनु = बेल की तरह वृद्धि होने की कामना या लार टपकना।
इ० velleita - व्यल्लेइता/बेलेइता = इच्छा, इच्छा करना, कामना।
व्यु० कु० शब्दों के आधार पर इसकी व्यु० हो जाती है।

क्र० पड़ो कुरो/फलो (फरा) कुरो = कुरा का होना/ कुरा का फलना (कुरा कांटेदार गोल फल होता है जो बालों में चिपक जाता है।)
इ० pro-cura - प्रो-कूरा/पड़ो-कुरा/फरो-कुरा = सावधानी बरतना।
व्या० इटालियन 'प्रो' की व्युत्पत्ति ऊपर पड़ो या फरो से कर दी गई है। कुरा, कुरी कांटे का नाम है। इसकी व्यु० है कयूरा (करने वाला) अथवा चुरया (चूर्ण करने वाला, छेदन, भेदन करने वाला, कष्टकारी)।

---

## कुमाउनी : रूमानियन

कु० घेटो, घेटनु = खम्भा, गाड़ना, भूमि खोदकर खम्भा खड़ा करना और उन्हें परस्पर बांधना, स्थापित करना।
रू० ghetou = घेटो/घेटोउ = घेट्टो, यहूदियों के रहने के कमरे या झोपड़े।
व्यु० गहेत + ओउ > होउ = जहाँ पर खाना बनाने या अन्य निर्माण (गहना, बनाना) कार्य हो।
व्या० मूल में खानाबदोस दशा में हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य जहाँ भी जाता था। वहाँ प्रतीक रूप में एक खम्भा गाड़ देता था। इसी के चारों ओर वे सभी रहते और खाना आदि बनाते थे। धीरे-धीरे झोपड़ी आदि के लिये भी खम्भे 'घेटने' लगे तो उसी घेटने से घेटो या घेट्टो बना जिसका अर्थ मकान या झोपड़ी है और उसमें वस्तुएँ भोजन आदि 'गही' जाती थी। दूसरी व्यु० है गहइ तओ = तवे अर्थात् भोजन कक्ष/या भवन का निर्माण (गहना)/यह गहेतोउ ही घेटो या घेट्टो में परिवर्तित हो जाता है। शरीर में तवा, घर, भोजनगृह, भवन सबका एक ही स्थान है। कहने का अर्थ है वहाँ जिसे तवा कहा जाता है वही भोजनशाला भी है, रसोईघर भी तथा भवन भी।

क्र० आ जुट = एकत्र होना, इकट्ठा होना, एकजुट होना।
रू० ajut - आजुट = सहायता।
व्यु० जुट या युत शब्द जू, सं० युज्, युग = जोतना अथवा एक साथ कार्य करने (जोत) से व्युत्पन्न है।

कू० जू/जुवा/जुआ = जुआ।
जोक्, जोकनु = कंधे में रखकर ले जाना, डोली की तरह ले जाना।
रू० jug - जुग/युग = जुआ (सं० युग)।

कू० झार = अत्यधिक क्रियाशील द्रव्य, जो ऊष्मा उत्पन्न करे जैसे लाल मिर्च, सरसों का झार।
रू० jar - जार/झार = दहकते कोयले।
व्यु० जआर > झयार = जो ताप और झनझनाहट उत्पन्न करे।
व्या० शरीर में दहकते कोयले का अर्थ ही है ऐसा रसायन जो तीव्र ऊष्मा उत्पन्न करता है।

कू० छारो/सारइ = राख/जो सारता है, जिसमें वहनशीलता हो या जो सार (तत्त्व) हो।
रू० sare - सारे/सार/सारइ = नमक।
व्यु० सा > छा (= छा जाना, या फैल जाना)+ रए/रई (छा जाने की क्रिया करना)।
व्या० छार्/छारो में अनेक लवण होते हैं इसे सं० में क्षार कहा जाता है। दूसरी व्युत्पत्ति है सार + ए/ई जिसमें गति लाने (सारने) की क्षमता हो अथवा सबका सार हो (प्राकृत नमक तथा राख में सभी तत्त्वों का सार होता है)।

कू० अर-बेर/आड़-बोड़ = पेड़-पोधे अथवा झाड़-झंखाड़।
रू० arbore - आरबोर/आरबोरे/आर्बोरे = वृक्ष।
व्यु० अर/आर = धुरा (सं० अरा) + बओरए > बहोरए=बहाया गया हो, उगे हों।
व्या० शरीर वृक्ष की तुलना है। भोजन प्रणाली मुख्य धुरा है इसमें से रक्त वाहिनियों में बहता द्रव ही वृक्ष, झाड़-झंखाड़ है।

कू० कोरनु = कोरना, काटना (रूढ़ अर्थ में कहूकस करना)।
रू० cordu - कोर्दु/कोर्दु/क्वर दउ = जंगल।
व्या० जंगल का अर्थ अधिक घने पेड़ पौधों का उगना है जो अन्ततः अराजक स्थिति उत्पन्न करते हैं। इन्हें नियंत्रित करने के लिये वृक्षों की छटाई, निराई की जाती है। इस सन्दर्भ में 'जंगल' वह है जिसे कोरने या काटने या छांटने की आवश्यकता होती है या जिसे कोरा (काटा) जाता है।

कू० काँस = काँस नामक घास।
रू० casa - कासा/चासा = घर, मकान।
व्या० लोक में काँस के झोपड़े सर्वप्रथम बनते थे। उसी प्रकार शरीर लोक में कास रस से रहने योग्य कमरे बनते हैं। सं० में यह काश् (कफ) के रूप में रूढ़ है। भोजन प्रणाली में यह काश चिपककर (कसकर) एक भवन का निर्माण कर लेता है तभी उसमें निवास हेतु अन्न प्रविष्ट करता है। पुराणों ने इसे राजा द्वारा सेना

सहित अन्य नगर में आतिथ्य स्वीकार किये जाने की कथाओं के रूप में वर्णित किया है।

कु० सतुदिअ/सतुदिउ = सतू दो/सतू दिया।
रू० studiu- स्तुदिउ/स्तुदियु = पढ़ना, समझना, जानना, स्थिति से अवगत होना।
व्या० शरीर में उन रसों के परिपाक को सतू (सत्तू) कहा जाता है जो मन, विचार, तर्क, स्तुति के जनक होते हैं।

कु० उमोड़/उमोड़ि/उमेठि = उमेठना, पिचकाना, तोड़ना, ऐंठना, निचोड़ना।
रू० omori - ओमोरी = मारना, हत्या करना।
व्या० कान, हाथ उमेठ कर तोड़ दिया जाता है। इसी क्रिया के अनुरूप 'ओमोरी' का अर्थ मारना या हत्या है।

कु० माँज = चूल्हे में पकाने की पतीली आदि चढ़ाना/पकने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का आधार।
रू० masa - मासा/माजा/माज = मेज।
व्या० 'माँज' में पतीली मुख्य आधार होती है जिसमें अन्न डाला जाता है, यह मेज का ही कार्य करती है, पकाती भी है तथा इसी से खाया भी जाता है। क्योंकि भोजनतंत्र में कोई मेज अलग से नहीं होती है।

कु० उनुइ = उनका, उनके लिये, उनसे सम्बन्धित।
रू० unui - उनुइ = उनका, उनको।

कु० चिननु/चिन्नु = चिनना, दीवार का निर्माण।
रू० cinta = चिन्ता = गाना/चिनने (निर्माण) की सम्पूर्ण प्रक्रिया 'गाना' ही है।

---

## कुमाउनी : रूसी

कु० लेटो/लिटो/लिट्वा = छाछ में मंडुवा या अन्य अन्न के आटे का पकवान या लिट्टी।
रूसी (प्रा०) lito लीटो/लीतो (नव०) leto लेटो/लेतो = ग्रीष्म ऋतु।
व्या० जब रसों को परिपाक होकर उनमें गाढ़ापन आ जाता है और वे लिट्वा या लिट्टी (भो०पु०) की तरह कठोर हो जाते हैं तो यही ग्रीष्म ऋतु है अर्थात् ऊष्मा द्वारा पचन क्रिया काल ग्रीष्म ऋतु है। पुराणों में शरीर में अन्न (लिट्वा) का होना ग्रीष्म ऋतु और न होना शीत ऋतु कही जाती है। क्योंकि अन्न (लिट्वा) से ही ऊष्मा बनती है।

कु० वोदा/ओद/ओदा = पानी भरी (गीली) लकड़ी/नमी/नमी युक्त वस्तु।
रूसी (प्रा०) voda - वोदा = पानी।
व्यु० जिसे हम ओद/ओदा या वोदा कहते हैं। वही रूसी में 'वोदा' है। इसकी व्युत्पत्ति है– जो 'ओदन करे वह 'वोदा' है (ओद = गीला)।

कु० ग्वल = नारियल।
रूसी golova - ग्वलोवा/गोलोवा = शिर।
व्या० ग्वल (नारियल) तथा शिर में रसोत्पत्ति में समानता है। नारियल रस (शिर में निःसृत होने वाला लार) स्वयं भी शीर्ष (उच्चतम सिरा) है।

कु० जिभ्किच = जीभ की कीच (=लार)।
रूसी gibkij गिबकिज (य)/जिबकिझ = लचीला (गीपकीज)।

कु० शीत = ठन्डा, ठन्ड।
रूसी sit - सीत/छीट = सीना (सिलाई करना)।
व्या० ठंडी वस्तु जम जाती है या परस्पर सिल जाती है जैसे चीनी की चासनी। रूसी सीत (= सिलाई) छीटें डालकर ठंडा करने से भी हो जाती है या झीट (परस्पर झेटने से भी) से भी सम्पन्न होती है।

कु० बोज्/बोज्यूनु– बोझ/बोझ बनाना और ले जाना।
बुजनु = बंद करना, रोकना।
रूसी vojna - वोजना/बूजना = युद्ध, लड़ाई।
व्या० लड़ाई में बोझा भी ढोया जाता है तथा शत्रु पक्ष को रोका भी जाता है, लकड़ी, पत्थर की दीवाल बनाकर या अन्य ढंग से।

कु० दिन = दिन।
रूसी den - देन/दइन/दएन = दिन।
व्या० दिन वह है जब कोई देता है, अर्थात् जब खाने को मिलता है। अथवा जब देने के लिये जाया जाता है वह भी दिन है। जैन परंपरा में है कि वे दिन में ही खाना ग्रहण करते हैं अथवा वितरित करते हैं।

कु० बोज्/बोजि/बोझि = बोझ
रूसी (नव०) voz = वोज/बोझ
प्रा० रूसी vozi = वोजि/बोझी
> = बैलगाड़ी।

कु० भ्यज, भेज् = भेजना। बहैज = बहते हुए जाना।
रूसी vez - वैज/वेज/बहैज = आवागमन।

कु० भिज्/भिच् = भीगना, पानी सोखा हुआ/भीचना = दबाव देना (भार)।
रूसी ves - वेस/वेज/भीज = भार, भारी।

**कु०** पकूनु/पयून = पकाना, रोटी बनाना/बनाना, बटना।
**रूसी** peku - पेकू/पएकू/पए कउ = पकाना, बनाना (मैं पकाता हूँ)।
**व्या०** 'पयाने' की क्रिया में किसी भी वस्तु का निर्माण सम्पन्न हो जाता है, चाहे इसे जिस क्रिया के लिए 'रूढ़' बना लिया जाय।

**कु०** पिश्/पिशनु = पीसना।
**रूसी** pisat - पिशात = लिखना।
**व्या०** जैसे-जैसे द्रव्य पीसते हुए महीन होता जाता है तो पतली लपसी जैसा बन जाता है, इसी का चिपकना, शरीर में लिखना कहा जाता है। श्वास प्रश्वास के कंपनों से तरंगे (रेखाएं) बनती है जैसे 'कार्डियो ग्राफ' में। शरीर के बाहर उंगलियों हथेली, मस्तक में तथा अन्दर भोजन तंत्र में लार के योग से रेखाएं बनती है। पुराणों में इसे 'ब्रह्म लेख' कहा गया है।

**कु०** पिश्नयूँ/पिशउ = मैं पीसता हूँ।
**रूसी** pisu- पिशू/पिशउ = मैं लिखता हूँ।
**व्या०** पीसने की प्रक्रिया में महीन बनाना और फैलना साथ-साथ होता है, फैलने की क्रिया ही लीपना भी है। अत: जो लीपता है वह लिखता भी है। (देखें रुसी-पिशात्)।

**कु०** घरौंद् = घरौंदा, रहने का स्थान, मकान, झोपड़ी।
**रूसी** goroda - गोरोद/गोरोदा/घोरोदा = नगर, पुर।

**कु०** ऊ पशनु/ऊ पिशात् = ऊ (लाल गेहू) पीसना/ऊ पीसने की क्रिया है।
**रूसी** opisat - ओपिसात् = वर्णन करना।
**व्या०** पीसने की क्रिया में उत्पन्न ध्वनि-प्रतिध्वनि ही 'वर्णन' करना है।

**कु०** चिल्यूनु/चिलौनु = चिढ़ाना, उत्तेजित करना।
**रूसी** celuet - चिलूइत–चिल् + उइत = चुम्बन देना।
**व्या०** कु० में 'चिल्' भूसे के सूक्ष्म कणों का नाम है जो खुजली, उत्तेजना करते हैं। यही गति या उत्प्रेरण का कारण है। इसी साम्य से शरीर में विद्युत कण भी 'चिल्' हैं। जो गति या उत्तेजना करते हैं। रूसी 'चिल्यूइत' का यही अर्थ है, जिसे हम चाहते हैं, उसे यही गतिदायी 'चिल्' देते हैं। 'उइत' का अर्थ उलीचना या देना है।

**कु०** पुच्चि = प्यार करना, चुम्बन लेना, पुचकारना।
**रूसी** poceloval - पुची लओ भयल/पोचीलोवाल/पुचीलू भयल अथवा पओ + चिल + व्यॉल् = चुम्बन दे देना।
**व्यु०** पओ = हवा करना, चिल = उत्तेजक द्रव्य, व्याल् (कु०) = वेल बन जाना (लिपट जाना)। इसका अर्थ है वायु के झोकों से बेल की तरह (या लहरों का)

लिपटना ही 'पोचीलोवाल' है।

कु० दवेर = बंद करना, आगे-पीछे भगाना, हटाना।

रूसी dver - द्वेर/दवेर = दरवाजा।

कु० जकड़नु = कसना, बंद करना।

रूसी zakryla - जकरीला/जकड़ीला = बंद होना।

---

## कुमाउनी : पोलिश

कु० नाई पोल्यो = नहीं पकाया/नहीं पकाऊंगा।

नाइ दवोर्सी = कूटना, पीसना, पकाना आदि न होना।

नाइ दवोर जउ/ना द्वार जउ = कूटने, पीसने, पकाने न जाना।

पो० na polu - ना पोलु = बाहर (क्राकोव में)

na dworze - ना द्वारजे/ना दवोरजे = " (पोजनान में)

na dworzu - ना द्वार जु/ना दवोर जु= " (वार्सा में)

व्या० उक्त तीनों प्रकार के शब्दों को ऊपर कुमाउनी से मिलायें, सभी का अर्थ है— खाना नहीं बनाया गया है, अर्थात् बनाने वाली बाहर गयी है। पोलना, दवोरना, पकाने के अर्थ में तथा 'ना' नहीं का अर्थ देता। द्वार (घर) में नहीं होना ही इसका कारण है।

कु० लिस्/लिस्नूज = लीसना/लिसते हुये जाना।

लिस्त्यून् ज = लिस्ते हुए जाना (लिसना = चिपकाना, देना)।

लिस्तोवी (वही) = लिस्ते हुये जाने वाला।

लिस्त्यूनूछ जउ = जो जाता है वह लिस्ने वाला है या लिस्ते हुए जाने वाला है।

पो० listonosz - लिस्तोनोस्ज-लिस्तो नवोस् ज= पोस्टमैन, डाकिया (क्राकोव में)

listowy - लिसतो वी (भइ वही) = " (पोजनान में)

listonosz - लिस्तो नवोस् ज = " (वार्सा में)

व्या० कु० और पोलिस् के तीनों शब्दों को मिलायें दोनों का अर्थ लिसने (= देने) और आगे बढ़ने से है। अब आप पत्र दें या कुछ अन्य इसका अर्थ है, देते हुए या लिसते हुए जाना— इसे 'पोस्टमैन' के लिए रूढ़ बना लिया गया है।

कु० लेख = कच्चे चावल का घोल, वर-वधू के चेहरे की सजावट (चावल के घोल से)।

पो० leki - लेकी = औषधि। व्या० चावल का मांड़ ही प्रारम्भ में पच्य या

औषधि के रूप में दिया जाता था। परंपरा रूप में यह प्रथा अब भी है। सं० में लेख का अर्थ पतला करने वाला द्रव्य होता है।

**कु०** गिज = लार (गिजगिजानु)।
**पो०** ges - गीज, गिच = हंस। **व्या०** 'हंस' वह पक्षी है जो जल, थल और नभ तीनों में चलता है या जिसकी गति तीनों लोकों में है। 'लार' के अनेक रूप 'हंस' कहे जाते हैं, इसकी गति भी हंस की तरह तीनों लोकों में है।

**कु०** मुन्श = पति
**पो०** maz - मोंश/म्वाँस = पति। **व्या०** यह मवोंस्/मयॉस् (= जो पालन पोषण करता है) का ही भिन्न उच्चारण है।

**कु०** लिस्टयाइ/लिस्त्याइ = लिसी हुई, चिपकाई हुई, जिसमें जगह-जगह लीसने के चिन्ह हों।
**पो०** liste - लिस्ती/टी = सूची, लिस्ट।
**व्या०** मूल रूप में दीवाल में चिन्ह चिपका दिये जाते थे या लस दिये जाते थे। बाद में ये चिन्ह स्याही से 'लिसे' जाने लगे। अत: लीसने की क्रिया से ही लिस्ट बना है (लिस्त/लिसत्) = लिसा हुआ या लिस्ट)।

**कु०** पिश्/पिशनु = पीसना/पीसने की क्रिया।
**पो०** pisze - पिशे/पिशी/पिश्झए = मैं लिखता हूँ। इसके लिये देखें रूसी pisat (पिशात् पृ. 101)।

**कु०** तस्वेत्छ/तसैत्छ = वैसा ही है जैसे पहले था, हमेशा एक सा।
ताशिस्तवो = तवा गर्म हो गया है या तवें को सदा गर्म रहना चाहिये।
**पो०** czesto - त्सीस्तो/तसइस्तो/त्शीस् तओ = सदा, हमेशा/तवे में हमेशा उबलते रहना चाहिये (त्शीस् = उबलने का 'शीत्कार')। **व्या०** कु० और पो० दोनों का अर्थ है अग्नि 'सदा' प्रज्वलिल रहनी चाहिये। यह प्राचीन काल से चली आ रही परंपरा है। यहाँ पर शरीर की अग्नि से अर्थ लिया जाता है।

**कु०** सुक्कि/सुक्को = सुखाया हुआ, सूखा।
**पो०** suchy - सूखी/सूक्खी/सूची = सूखा, शुष्क।
**व्या०** सूखा वह है जो सूची की तरह चुभे।

**कु०** जग्याल = प्रातकाल: जाग कर अपने-अपने कार्यों में लग जाना।
जाइयल/झग्याल = जाने की क्रिया/खेने से उत्पन्न झाग।
**पो०** zagiel जागियल/झागियल/= खेना, नाव चलाना।

**कु०** खौरीनु/झुरो = ज्वर से तपना/सूखना, बीमार पड़ना। खुरा = खुर से घायल।
**पो०** chora - खउरा/खौरा/झुरा/खुरा = बीमार।

**कु०** दुखतोड़ = दुख तोड़ने/हटाने वाला।
**पो०** doktor - डाक्टोर/दुखतोड़ = डाक्टर, चिकित्सक।

---

## कुमाउनी : चेक (जेक) और स्लोवाक

**कु०** रौलि = जहाँ जल स्रोत हों, जो रहने योग्य जगह हो, जो एक जगह स्थिर हो गयी हो (रल् धातु से मुक्त) अथवा जहाँ पर ये सभी गुण हों।
**चे०** role - रोले/रौली = भूमि, खेत (रओ लि = जहाँ रहा जाय) या जहाँ साधन रहते हैं।
**स्लो०** rala - राला/र्याला = भूमि, खेत (र्याला = गीली सनी भूमि)।
**व्या०** कु० और चे० की व्यु० समान है जो अर्थ में देखी जा सकती है। स्लो० राला/र्याला का अर्थ है जो सनी हुई हो, जिसे सान दिया हो ऐसा स्थल अर्थात् जुता हुआ, भुरभुरी मिट्टी युक्त जगह ही खेत है।

**कु०** राँधनु = राँधना, काटना, पीसना, मिलाना, फेंटना। रासायनिक क्रिया का होना। 'रड़लो' = सरकते हुये पीसने, राँधने वाला।
**चे०/स्लो०** radlo - राड्लो/राध्लो = हल। **व्या०** जो क्रिया हल करता है वही 'राँधना' भी है अत: यहाँ रांधने की क्रिया करने वाली यांत्रिकी 'हल' है। यदि इसे 'राड़लो' कहेंगे तो अर्थ होगा अवरोधों को दूर करने वाला, 'रड्लो' कहेंगे तो अर्थ होगा सरक (रड़) कर पीसने वाला।

**कु०** ज्येड़/जेड़लो = चिपकाना/जिस पर अन्य को चिपकाया जाय।
**चे०** zerd - ज्यर्ड/ज्यड्द = खम्भा।
**स्लो०** zrd - जर्द/जर्ड/जड़द = खम्भा जिस पर अन्य को जड़ा जाय।
**व्या०** यह अर्थ से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ खम्भा का अर्थ स्तम्भ या धुरा है जिस पर अन्य शाखायें चिपकती है या उन्हें 'जेड़ा' जाता है।

**कु०** भल्क= चूल्हे पर गाढ़ी लपसी का उठना गिरना। पानी का भल-भल ध्वनि से खौलना, कनस्तर से तेल या पानी निकालते समय की भल-भल ध्वनि। (अंग्रेजी का वाल्केनो (ज्वालामुखी) इसी 'भल्क' (वल् या भल् धातु) से व्युत्पन्न है।
**चे०/स्लो०** vlk - वल्क/भल्क = भेड़िया।
**व्या०** कुमाउनी शब्द 'भल्क' की यांत्रिकी और क्रिया देखें। 'पंचतत्र' की लोमड़ी के 'खट्टे अंगूर' की यांत्रिकी है— उफान उठता है और गिर जाता है, लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता है यही भेड़िया/लोमड़ी वर्ग की प्रकृति है।

कु० मिस्याल्/मिज्याल् = महीन पीसना, महीन पीसकर मिलाना, मिश्रण।
चे० mysl - मिस्ल/मिज्ल = मस्तिष्क।
स्लो० mysel - मिसेल/मिजेल/मिस्यल = मस्तिष्क।
व्या० जिस प्रकार महीन पीसकर सत्त्व बनता है वैसे ही शरीर का सत्त्व मस्तिष्क है। जो 'मिजा' हुआ भी है तथा मीजने की क्रिया को नियंत्रित भी करता है।

कु० पकनि/पकाइनि = पकने योग्य/पकाई हुई, परिपक्व, स्वादिष्ट।
चे०/स्लो० pekny - पक्नि/प्यक्नि/पए कइनि = बढ़िया, उत्तम।

कु० पिस्नि = पीसना, पिसा हुआ, पीसने की यांत्रिकी।
स्लो० piesni - पीस्नी/पईए छनी/पैस्नी > पैज्नी (= पैजनी)= गाना।
व्या० पीसने या छानने से जो ध्वनि निकलती है वही गाना है।

कु० चलाप = चाल देना, चलने में एक के बाद एक पैर का उठना-गिरना।
चे०/स्लो० chlap - चलाप = साथी।
व्या० साथ चलने वाले ही साथी, मित्र हैं। पुराणों में इसी ढंग का वर्णन है कि तीन कदम चलने पर ही मित्रता हो जाती है।

कु० बतूनु = गेहूँ आदि से भूसे को हवा से उड़ाना, ओसाई करना।
स्लो० vtaci - बताचि/वताकी = चिड़िया, पक्षी।
व्या० जो 'वात' = हवा में उड़े, बहुत बात करें या हवा को उड़ाये।

कु० औत् शी/औट् शी = शी-शी ध्वनि का आना/औटने पर शी ध्वनि का आना।
चे० otce - औत्शी/औत्सी/औट्शे = पिता।
व्या० वह शक्ति जो चेतना देती है, निर्देशन दे पिता है। जैसे औटने से द्रव्यों का शोधन होता है, वैसे ही पिता भी पुत्र को संस्कारवान् बनाता है।
कु० सटर-पटर = ईधर का ऊधर, ऊधर का ईधर करना।
चे०/स्लो० stroj - स्ट्रोज (य)/सटरो जऽ/छटरो ज (य) = मशीन।
व्या० जो सटर-पटर करे (जैसे उलटना, पलटना, रखना यह क्रिया हृदय का 'वाल्व' करता है।) अथवा सटाते हुए जाय या छांटते हुए जाय।

कु० मेस्टो, मोस्टो/मीजतो— बांस की चटाई/मीजने वाला, निर्माण स्थल।
चे०/स्लो० mesto - मेस्तो/मेस्टो/मीस्तो/मएस्तो/मीजतो = नगर।
व्या० जिस स्थान (मोस्टा) में 'मएस्तो'/मीजतो (निर्माण) कार्य हो वही नगर है। 'मएस्तो' का अर्थ कु० 'मै' (मइ) की क्रिया है जो निर्मित सामग्री को सम्प्रसारित करती है।

कु० सुक्को = सूखा।
चे०/स्लो० suchu - सूकू/सुखु/सुको = सूखा, अवर्षण।

कु० दुड़बुड़ो = गाढ़ा लुआबयुक्त रस।
डोबरो = सब्जी का रस जिसमें रोटी डुबाई जाती है (डोब्, डोब्नु, डुबार।
चे० dobru - दोब्रु/डोब्रु = अच्छा, स्वादिष्ट।
स्लो० dobre - दोब्री/डोब्री = अच्छा, स्वादिष्ट।
व्या० शब्दों के साथ अर्थ की समानता स्पष्ट कर देती है कि कु०, चे०, स्लो० तीनों के स्रोत समान हैं। स्वादिष्ट वही होता है जिसमें लपसी, गाढ़े रस का जायका उत्पन्न होता है।

कु० ओंक औनु/ओंक जानु = उमस का आना/उमस का जाना।
चे० okno - ओक्नो > ओंक नओ (नवो) = खिड़की, अर्थात् उमस या हवा के आने जाने (नावन) का रास्ता।

कु० कड़ छनायि = कड़ा छना (पका) हुआ, कुरकुरा।
चे० krasny - क्रास्नी > कड़ां + छनी (सनी)। = सुन्दर।
व्या० पूरी आदि कुरकुरी या कड़ी छनती है तो उसका रंग भी सुन्दर, आकर्षण होता है। यहाँ सुन्दर का अर्थ स्वादिष्ट से है।

कु० भई धूँ/भ्यदों = होना धुएं का (धुंए का होना)/भेदन करना, चुभना, जलन होना, टीसना।
चे० vedom वेदों/विदोम्/भइ धूम (धूँ)/भेदों = सतर्कता/चैतन्यता।
व्या० जब धुआँ होता है तो वेदना होती है, चेतना जागृत होती है। खाना जलने की पहचान धुँए से होती है अत: धुएं या अन्य तरह की वेदना में व्यक्ति सावधान हो जाता है या चैतन्य हो जाता है।

कु० ब्वलूनु/ब्वलात = बुलाना।
चे०/स्लो० volat = बोलात/ब्वलात/बौलआत/भोलआत (यात) = बुलाना।
व्या० 'ब्वल' उफान का शब्द है। कु० में 'बौल'/'भोल' वर्षा काल के उफनते पानी का नाम है, जो 'ब्वल' शब्द के साथ दौड़ता है। यही सूचना है, बुलाना है।

कु० निस्टनु/निस्ट्यूनु = बाहर ले जाना, समाप्त करना, कार्य पूर्ण (समाप्त) करना।
चे० nest- नेस्ट/निस्ट/नयस्त = ले जाना, करते रहना।
स्लो० niest- नीस्ट/नइयस्त (नावन् करना) = ले जाना।

---

## कुमाउनी : सर्ब एवं क्रोट

सर्ब और क्रोट भाषाओं के तीन प्रमुख प्रकार हैं। (i) cakavian (= काकावियन),

(ii) kajkavian (= काजकावियन), (iii) stokavian (= स्टोकावियन)। पौराणिक दृष्टि से काका = क्या-क्या + भइयन = क्या-क्या हुआ? में एक प्रश्न है, जिसे लोमश और अन्य ऋषि काकभुशुण्डि से प्रश्न करते हैं और इस प्रश्न का विस्तार से वर्णन काकभुशुण्डि करते हैं। 'काज्कावियन' का सम्बन्ध भी प्रश्नात्मक है— काज् का भइयन = काम क्या हुआ? 'स्तोकावियन' परिणाम वाची भाषा है। स्तव का भइयन = स्तुति या क्रिया का क्या परिणाम हुआ? इससे स्पष्ट होता है कि पुराण कथाओं का सम्बन्ध इस भाषा से है।

कु० राल = थूक, लार, की वृक्ष की राल (गोंद)।
स०-क्रो० ral - राल = भूमि, खेत। व्या० रल् धातु से व्युत्पन्न 'रेला' कीचड़ युक्त मिट्टी ही 'राल' है, चूंकि शरीर में इसी से भूमि का निर्माण होता है (पुराणों की भूमि) अत: राल का अर्थ मिट्टी या खेत है। ज्वालामुखी का लावा भी पृथ्वी की राल है जो मिट्टी/भूमि बन जाती है।

कु० रालो/र्यालो = मिलाया हुआ/घुला हुआ, सना हुआ।
स०-क्रो० ralo - रालो/र्यालो = हल/जोता हुआ। व्या० जो रालता (मिश्रित) करता है वह हल है। जिसे 'र्याला' (साना) जाय वह जोता हुआ खेत है।

कु० रड़नु/रड़ाक्/राधनु = खिसकना/फिसलना/काटना, पीसना, कूंचना, राँधना
स०-क्रो० radostan - रादोस्तान/रड़ोस्तान/राधोस्तान = आनंददायक।
व्या० फिसलन (जैसे बर्फ में), झूलना आदि आनंद प्रदायी होता है, पौराणिक 'राधा का स्थान जहाँ दही मथी जाती है, 'रादोस्थान' है। दही मथना भी राँधना ही है। पुराण राधा के स्थान को आनंद से भरपूर बताते हैं। दही मथने की क्रिया ही एक प्रकार की 'रासलीला' है।

कु० वल्क, भल्क/भलाक = वल्-वल् की ध्वनि, तरंग गति/उछाल, तीव्र गति।
स०-क्रो० vlak = व्लाक/वल्क/वलाक = रेलगाड़ी।
व्या० भल-भल करते हुये जल में, जल प्रवाह को आगे बढ़ाने की तरंग का नाम वल्क या भल्क है। क्रिया से निर्मित वलाक् (=गति) को ही ट्रेन के रूप में देखा गया है।

कु० बोज् = बोझ, गट्ठर।
स०-क्रो० voj - वोज = ट्रेन (पश्चिमी क्षेत्र में)।
व्या० बोज् (भार) तथा वओज > बहोज (जो बहते हुए जाता है) दो प्रकार की व्युत्पत्ति बोज् शब्द की होती है। {कु० तरैं/तरोंनि = सामूहिक रूप से तैरने, पार करने की क्रिया। अं० train - ट्रेन = रेलगाड़ी। व्यु० कु० की तरह-तरैं/तराइन।}

कु० पढ़पीठ/घोग्पीठ/विद्यापीठ/विश्वविद्यालय = प्राचीन गुरुकुल, विश्वविद्यालय।

'पीठ' का अर्थ 'आसन' या केन्द्र है जहाँ से ज्ञान विज्ञान का प्रसार होता है।
सबै उकलिस्ति = सबके चढ़ने की सीढ़ी, रास्ता।
स०-क्रो० sveuciliste - सवेउकिलिस्ती/सबै उकिलिस्ती = विश्वविद्यालय।
व्या० सवे = सबै = सबको, उक, उकिल = कु० उकलूनु (ऊपर चढ़ाना), लिस्ती = कु० लिस्न/लिस्ती = सीढ़ी। इस प्रकार 'सवैउकिलिस्ती' का अर्थ है जहाँ सबकों उक् (= पार करना, चढ़ना, उद्देश्य प्राप्ति) का ज्ञान (लिस्ती = सीढ़ी) दिया जाय।

कु० सतुदिन्त/सटू दिन्त = सत्तु देना/सटा देना, सटाना।
स०-क्रो० student = स्तूदिन्त/स्तुदेन्त/स्टूडेन्ट/सतु देन्त = विद्यार्थी, शिक्षार्थी।
व्या० शरीर राज्य में सत्तु या सत्तू – प्रोटीन, म्राड़ी तथा खनिज लवण से संपृक्त द्रव का नाम है। जो ऊष्मित होकर, चिपकता है। इसी से मेड़/दीवार बनाई जाती है जिससे शरीर में एक भाग से दूसरे भाग में अधिक जल बहाव को रोका जाता है। पुराणों में धौम्य के शिष्य आरुणि (महा० आ०प० अ० ३) ने दीवार में स्वयं 'सट' (सत्तू/'सटू') कर बहते जल को रोक दिया था। शरीर का विद्यार्थी स्वयं ही विद्यार्थी भी है तथा रासायनिक द्रव्य भी। एक अन्य व्यु० भी है 'सतु' को ही इष्/इस् भी कहते हैं। पौराणिक जलप्लावन के बाद भूमि अथवा तवा (भोजन की भूमि) के निर्माण की समस्या आती है। इस् + तव दियन्त > इस् तू दियन्त= स्टूडेन्ट/स्तूदेन्त अर्थात् जे निर्माण एवं पाक कला को सीखता है। यहाँ पर 'पाक' या तवे का 'रूढ़' अर्थ न होकर रासायनिक ज्ञान एवं उसके सम्पूर्ण विकास के ज्ञान को जानने से है। 'इस्' का अर्थ लोक प्रचलित 'सत्तू' नहीं वरन् रासायनिक द्रव्यों का एक विशेष प्रकार है। अं० के student (स्टूडेन्ट = छात्र/छात्रा) की व्याख्या भी इसी तरह है। सर्व-क्रोट भाषा में छात्रा के लिए studentica (स्तुदेन्तिका) शब्द है। महाभारत की इसी कथा में धौम्य के दो अन्य शिष्य उपमन्यु और वेद की क्रियाओं से भी 'स्तूदेन्त' की व्युत्पत्तियाँ होती हैं। 'स्तु' से स्तव (स्तुति) शब्द भी बनता है।

कु० गोबरीनु/गोपरीनु = गर्मी पाकर गोबर का गर्म होना, सौं-सौं ध्वनि करना, गन्ध विशेष देना।
स०-क्रो० govorite - गोवोरिते (टे)/गोवो रइते = बात करना।
व्या० बर्तन में मांड डाल दें, ऊष्मा देने पर वह सौं-सौं ध्वनि करता है, यही बात करना है। पुराणों में 'गो' वंश को सम्पूर्ण विकास एवं रसायनों का आधार माना गया है– इसीलिये उसको ब्रह्मा/सृष्टि निर्माता के साथ जोड़ा गया है। संक्षेप में रासायनीकरण से उत्पन्न ध्वनि-प्रतिध्वनि ही वार्ता है।

कु० पाँशो = पाश, बंधन, फांसी की रस्सी।

स०-क्रो० pas - पाश/पास/पयास = कमर बन्ध (पेटी)/कोई भी बन्धन।

कु० पारा/पयारा = लकड़ी का बर्तन जिसमें दूध पयाने की क्रिया होती है जिससे दही बनती है।

स०-क्रो० para - पारा/पयारा = भाप, वाष्प।

व्या० पयारा = जिसमें पया या मथा जाय। भाप दाल को पया (पका) देती है, भाप ही इंजिन के चक्के का 'पया' कर गति उत्पन्न करती है। संस्कृत में भाप की ऊर्जा को 'परा' कहा जाता है।

कु० जा कों/जा कौनु/जा कओन = जा कहना, आदेश देना।

स०-क्रो० zakon - जाकोन/जा कउन/जाकों = विधि, कानून।

व्या० शरीर में रासायनिक क्रिया से 'झा' (झंकार, झनझन) उत्पन्न होती है यही गति (जाने) का संकेत होता है। यह 'झा' 'जा' में परिवर्तित होकर जा कउन (जा कहना, या आदेश देना) कहा गया है। यही विधि है जो सबको आगे बढ़ने की आज्ञा या प्रेरणा देती है।

कु० सत्त्वर = सूखे पत्ते जिन्हें गोशाला में बिछाया जाता है।

स०-क्रो० satwar - सत्वार/साट्वार = वस्तु, द्रव्य।

व्या० कुमांऊ में सूखे पत्ते गोबर-गोमूत्र सोखने के उद्देश्य से बिछाये जाते हैं। शरीर में इन्हें 'पर्ण' कहा जाता है। पुराणों में पार्वती का नाम 'पर्णा' इसी आधार पर रखा गया है कि पत्ते सूर्य की किरणों से संपृक्त होकर रसों का निर्माण करते हैं। इसी अर्थ में 'सत्वार' का अर्थ आधारभूत द्रव्य है। जो अन्य द्रव्य को धारण कर अगले चरण का विकास प्रारंभ करता है। पुराणों में इसे 'माटी' कहा गया है, जो ऊर्जा का माध्यम होती है।

कु० र्‌यखा/रेखा = रेखा, पंक्ति।

स०-क्रो० reka - रेका/रेखा/रयिका = नदी।

व्या० रयि (= गति) + का (= करने वाली)। जो सदा गतिमान हो वही नदी है।

कु० जनाकु = जानकार, जानने वाला, विद्वान।

स०-क्रो० znacu - जनाकू/जनाछू = मैं जानूंगा।

व्यु० जना = जानना + कऊ = करना = जानने का उपक्रम करना जो भविष्य काल में जानने के योग्य होगा। 'जना' मूलतः 'झना' (झनझनाहट, चेतना) है।

---

## कुमाउनी : प्राचीन चर्च स्लावोनिक या पुरानी बल्गेरियन

कु० पोत = राख, उड़ती चिन्नारी, पोतना (= लीपना)।

प्रा० च० स्ला० – poti- पोंत/पोंति = रास्ता।
व्या० शरीर में 'राख' लार या श्लेष्म का नाम है। जहाँ यह बिछा है वही रास्ता है। 'चीटी' आदि को आटा देते हुए रास्ता दिखाया जाता है। 'आटा' (पोत, पोतना, लपसी) वृक्ष के रसों के परिपाक की परिणिति होने से एक प्रकार की राख ही है।

कु० इतइ = इसको, इधर को।
प्रा० च० स्ला० – iti- इति/इतइ/अटइ = जाना।
व्या० इसका (द्रव का) ईधर को आना या जाना, समाना (अटना) जाने (गति) का ही एक नाम है।

कु० कएना = जिससे कार्य सम्पन्न हो, जो कार्य करे।
प्रा० च० स्ला० – cena- केना/कएना = मूल्य।
व्या० जो रसायन क्रिया सम्पन्न करते हैं, वे 'मूल्य' कहे जाते हैं।

कु० सुक्को = सूखा, अवर्षण।
प्रा० च० स्ला० sukhu - सुखु/सुकउ= सूखा। देखें चे० suchu (सुखू) पृ०. 105।

कु० ग्ल्यूँ = पशु को गले में बांधने की रस्सी।
प्रा० च० स्ला० – glava- ग्लावा = सिर।
व्या० जिस प्रकार 'बाण' आदि का सिर, आगे-आगे चलता है, मनुष्य का सिर (मस्तिष्क) आगे-आगे रास्ता बताता है, वैसे ही गले का (ग्लावा= लार) रस्सी की तरह आगे-आगे चलता है अथवा वही रस्सी (ग्ल्यूँ) की क्रिया सम्पन्न करता है।

कु० सटनु = सटना, चिपकना।
प्रा० च० स्ला० – syti- श्यटि = सिलना, सीना।
व्या० सटना, सटाना, चिपकाना दोनों सिलने के पर्याय है। चाहे आप चिपका कर सिलें या तागे से चिपकाएं एक ही क्रिया के दो रूप हैं।

कु० भोग = वह द्रव्य, मिष्ठान्न, भोजन जो मंदिरों में चढ़ाया जाता है।
प्रा० च० स्ला० – bogu- बोगु/भोगु = ईश्वर।
व्या० यह भोग, बोग, बोगु ही प्राणी को जीवन देता है, उसकी इच्छाओं को तृप्त करता है। दर्शन में इसे द्रव्य रूप में अव्यक्त शक्ति कहा जाता है। पुराणों में इसे अव्यक्त का शरीर रूप में अवतार कहा गया है। वस्तु ही भोजन या 'भोग' है, एक इसे 'स्थूल' रूप में देखता है, दूसरा इसे अर्मूत गुण और संतुष्टिदायी शक्ति (ईश्वर) के रूप में देखता है।

कु० मीड़/मेड़ = मेड़, मिट्टी की दीवाल।
प्रा० च० स्ला० – mezda- मीजदा/मीजड़ा = सीमा, दीवार।
व्या० मीजने के बाद जो ढेर एकत्र हो जाता है उसे मीड़/मेड़ या सीमा, सीमा

रेखा या दीवार कहा जाता है; यही मीजड़ा (= मीजने से बना ढेर) है अथवा जहाँ जल और थल का मिलन होता है, वहाँ एक दूसरे को मीजते हैं, वह स्थल भी सीमा है।

---

## कुमाउनी : हंगेरियन

कु० माजनु = धोना, बर्तन साफ करना। हि० माजना।
हं०— majat - माजात् = यकृत (लीवर)।
व्या० जहाँ पर रसों का शुद्धीकरण होता है वही 'माजात्' (माजने वाला, मांजने का स्थान) है।

कु० गुनि = गुणवान, लंगूर।
हं० gunyt = गुनीत = मसखरी, उपहास, नकल आदि।
व्या० लंगूर (गुनि) जिस प्रकार मुंह दिखाता है, डराता है, उसी से 'गूनीत' बना है। 'गुड़' में अनेक 'गुन' होते हैं यह सभी को विचित्र नाच 'नचाता' है इस अर्थ में भी 'गुनीत' (गुणीत) मसखरा अर्थ देता है।

कु० चिप्वोट्नेर/चिपोतनएर = चिपचिपा, फिसलन युक्त, चिपकने वाला जो चिपकने और फसलने (नावन, नएर) की क्रिया करे।
हं० cipotnyer/cipotner- चिपोतनियर/चिप्वोतनेर, चिपोतनार = जूते।
व्या० पैरों में जो फिसलन चिपक जाती है वही जूते (= गति) बन जाती है। यह मांड़, काई, शैवाल श्लेम की क्रिया से सम्बद्ध है।

कु० चिप्वोतजेड्त्या/चिप्पोडार्त्या = चिपचिपा जेड़ने (जोड़ने) वाला/चिपचिपा डालने वाला।
हं० cipot gyart/cipoddart - चिपोतज्याड्त, चिपोत ग्यार्त (गेरने वाला)/चिप्वोडार्त = जूता बनाने वाला, मोची।
व्या० पुराणों में परशुराम की माँ रेणुका के पैर धूलि के कारण इसीलिए जल गये थे कि उस काल में भूमि में चिपचिपा द्रव नहीं बना था। दुर्वासा ने जिस खीर को श्रीकृष्ण को शरीर में लेप लगा लेने को दिया था वह सुरक्षा कवच ही था। पैरों के सुरक्षा कवच का नाम 'जूता' है। यह व्याख्या शरीर लोक के अनुसार की गई है।

कु० तीज सारु/- सारनु = तीज का सामान लाना/ले जाना। 'तीज' वह पर्व है जब सधवा स्त्रियाँ ब्रत रखती हैं तथा पति उन्हें साड़ी आदि देते हैं, बिहार और भोजपुर (पूर्वी उत्तर प्रदेश) में इसे अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। वहाँ 'तीज देना या पहुँचाना' शब्द प्रचलित है। कु० में भी 'दिनु' = देना है परन्तु हंगेरियन 'सारु'

की तुलना हेतु सारु/सारुनु दिये हैं।
हं० tiz saru/tissaur - तीज सारु/तीस्सौर, दिस्साउर = चप्पलों के दस जोड़े।
व्या० 'तीज' पर्व प्राय: सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। चप्पल पुराणों की खड़ाऊ (पादुका) है। 'दस' दश दिशाओं का प्रतीक है। फिसलने वाले द्रव का दशों दिशाओं में जाना ही 'दश' चप्पलों का जोड़ा है। इसी चिपचिपे द्रव को 'वस्त्र' भी कहते हैं। इससे शरीर की रक्षा होती है, चप्पल/पादुका गति की प्रतीक है जिन्हें पहनने (लपेटने) से ग्रास आदि दशों दिशाओं में सहज ढंग से पहुँच जाते हैं। इसकी एक व्युत्पत्ति तीस झारु (तीस (कु०) = प्यास + झारु = झाड़ना, निवारण) भी है। जो प्यास से उत्पन्न 'झार' (टीस) को दूर करे, वह 'झारू' है।

कु० माँस् (नु)/माँज (नु) = मांजना, धोना।
हं० mosson - मोस्सोन/मोज्जोन/मासोन = धोने योग्य/मांजने योग्य।
व्या० परंपरा रूप में मसो (= रास) से बर्तन धोये जाते रहे हैं। 'मासोन' इससे व्युत्पन्न है।

कु० ओल्/ओल्नु/वोल् (नु)/= आटा गूंथना, गूंथना, बनाना।
हं० ollo-val- ओल्लो व्याल्/ओल्लो वाल = कैंची।
व्या० ओल्लो = ओलना (कु०), वाल = बाल (अन्न) या व्यल (कटोरी)। अर्थात् ओलने (गूंथने) वाले बल का नाम कैंची है। आटा गूंथने की क्रिया को ध्यान से देखें तो इसमें जो बल लगता है वह कैंची की तरह परस्पर विपरीत दिशाओं से लगता है। कृष्ण ने भीम को जरासंध वध का संकेत इसी कैंची दांव को बता कर दिया था।

कु० किन्नर/किन्यरीनु = देववर्ग के गायन वादन में प्रवीण गण/आटे में हल्की खट्टी गंध का उत्पन्न होना या खमीर का बनना। सं० में इसे किण्व/किण्वन कहा गया है।
हं० kenyer-re = केन्येर- रए/किन्येर- रयी/किन्येर्री = रोटी में परिवर्तित होना।
व्या० दूध में दही जमाने वाले जीवाणु ही यथार्थ में 'किन्नर' हैं। यही किण्व खमीर, या आटे में बनते हैं। मूल द्रव्य को जीवाणु द्वारा अगले चरण के द्रव्य में बदल देने की प्रक्रिया 'किन्येर्री' है।

कु० निमिड़/निमड़नु/न्योमोड़ = अन्न आदि उपभोग सामग्री का समाप्त हो जाना।
हं० nyomor - न्योमोर (= न्योमोड़)/नयो मओर = कष्ट, भुखमरी।
व्या० नयो (नावन) + मओर (उपभोग) अर्थात् उपभोग (पालन-पोषण) हेतु जिसे नया (बहा) दिया गया हो दूसरे शब्दों में संग्रह के समाप्त हो जाने से उत्पन्न स्थिति = भुखमरी।

कु० झिमोड़ = पीली बर्र।

हं० gyomor - गिओमोर/ज्यो मोड़/झिमोड़ = आमाशय, पेट।
व्या० झिमोड़ (बर्र) के विकास क्रम एवं गुण आमाशय में पाये जाते हैं, इसी आधार पर इसे झिमोड़ (डंक/जठर) कहा गया है।

कु० साट्नु/साटोर = सटाना/सटाकर बनी कोई भी वस्तु।
हं० sator - साटोर= मण्डप (टेन्ट)।
व्या० साट्+ओर (ढ़) = जिसे सटाकर ओढ़ लिया जाय वही साटोर/साट् ओढ़ = चादर है। शरीर के अन्दर से देखें तो 'त्वचा' साटोर = मण्डप ही है। जिसके नीचे समस्त शरीर क्रियाशील है।

कु० दिश्जानु = दिशा जंगल (नित्य कर्म हेतु) जाना।
हं० diszno - दिशजनो = सूअर।
व्या० दिस + जनो = दिशाओं को जाने की अनुभूति (जनो) जो कराये वहीं सूअर है अर्थात् यह स्थिति सूअर के आने की सूचना है।

कु० ओल्/वोल = वोलना (आटा गूंथना)।
हं० ol- वोल् = मारना।
व्या० वोल् क्रिया में मीजना, कूंचना, पीसना, सानना सभी क्रियायें सम्मिलित है। इनसे 'मारने' का अर्थ उत्पन्न होता है।

कु० नयेल्वि (बि) = बहाने वाली, नावन क्रिया करने वाली।
न्यल्बी/नेल्बि = नेलने वाली, अनावश्यक झाड़-झखाड़ को अन्यत्र करने वाली, परखी।
हं० nyelve - नयेल्वि/नेल्वी = जीभ।
व्या० कुमांउनी शब्दों के अनुरूप इसकी व्याख्या है।

कु० झेक = झेकड़ो (कांटे युक्त झाड़ी)/वह वस्तु जिससे रास्ता रुक जाय।
हं० jeg/jege - जेग/जेगे > झेक/झेके = बर्फ (आइस)।
व्या० जिस प्रकार कांटे एक दूसरे से सट जाते हैं वही क्रिया बर्फ बनने में भी होती है। ठंडा होने पर द्रव्य से राह रुक जाती है, अत: शरीर में शीतल स्थिर द्रव्य ही बर्फ है। जो कांटे (झेक्) की तरह चुभती है अथवा परस्पर गुंथ जाती है।

कु० तवो (तओ)/तावा/ताव् = तवा, जिसमें रोटी बनाई जाती है।
हं० to/tava - तो (तवो)/तावा = झील। व्या० शरीर में, भूमि या बर्तन (तवा, तौली, कढ़ाई कोई भी) बनने हेतु जल (रसायन) एकत्र हो जाते हैं, जिसके सूखने से 'तवा' बनता है जिसमें शरीर से बाहर से अन्नाद रखा, पकाया जाता है। कु० की एक बोली में घने कुंज को 'झील' इसी अर्थ में कहा जाता है। शरीर में जो भोजनालय है वह झील भी है तवा भी, वही दोनों की क्रियायें सम्पन्न करता है।

कु० इज/इजा/इज्या = माँ।
हं० ij/ija -इज/इजा/इज्या= धनुष, झुकना, प्रत्यंचा, नमन करना, (सं० (इ) ज्या)।
व्या० शरीर में इज्या या डोरी (सूत्र) वह है जो सभी दिशाओं में नमन करती है, सभी की उत्पत्ति का कारण है, इसी अर्थ में कुमांऊ में इज का अर्थ मां तथा हंगरी में नमन, धनुष, प्रत्यंचा आदि अर्थ में लिया जाता है।
सं इज्य/इज्या यज धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ आराधना, यजन करना है, इसके देवगुरु वृहस्पति, आहुति देना, गाय, दान, पूजा, देवमूर्त्ति आदि अनेक अर्थ हैं, यह इज्य या इज्या ही 'ज्या' (डोरी) में परिवर्तित हो जाती है, अत: इज्या को भी हंगेरियन में धनुष कहा गया है। इज् = माँ को पुराणों के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। इज् इष् का एक रूप है जिसे प्रकाश भी कहा गया है। दुर्गा की उत्पत्ति का पुराण में वर्णन करते हुये बताया गया है सभी देवों के तेज (प्रकाश) समूह से दुर्गा (आदि शक्ति या आदि जननी) की उत्पत्ति होती है। यह इष् है जो सभी दिशाओं से आता है, इसी का नाम यज्ञ द्वारा उत्पत्ति भी है। यही दिशाओं द्वारा किया गया यज्ञ है। यही इस्, इष् या इज् सम्पूर्ण गुण-सूत्रों का पुंज होता है जिससे सभी की उत्पत्ति होती है। वेद-पुराणों ने इसे 'अदिति' भी कहा है। इज्/इज्या का गाय/गो अर्थ स्पष्ट कर देता है कि शरीर रूपी गो से नि:सृत गोरस ही इष् या इज् है। इष् (दुग्ध) का सूत्रीकरण अथवा रासायनीकरण (दधि तत्त्व) भी 'इस् या इज्' है जो सभी विकास क्रियाओं की जननी है। इस् में जब जनन शक्ति उत्पन्न होती है जो उसे 'इज्', इजा या इज्या कहा गया है। इसी इस् से 'नैमिसारण्य' की कथा जुड़ी है, जब ऋषियों ने 'नेमि' = धुरा अर्थात् आधार या पृथ्वी (गो) सत्र की विवेचना की थी। यह व्याख्या पौराणिक जलप्वालन के पश्चात् होने वाली शरीर यांत्रिकी और उसकी क्रियाओं पर आधारित है।

---

## कुमाउनी : फिनिश या सुओमि

कु० डाल्लो = बांस की बड़ी टोकरी।
फि० poydalla - पोय डाल्ला/पयोइ डाल्ला = मेज पर।
व्या० जिसमें पकाने, पोने के लिये डाला जाय वह 'डाल्लो' या मेज है। शरीर में डाल = शाखा भी टोकरी या मेज का एक प्रकार है, जिसमें पोय (पकाने) के बाद डाल (रख) दिया जाय वह भी 'पोयडाल्लो' है।

कु० तौलि/तोलि = छोटी पतीली/तुला, जिससे तोला जाय।
फि० tuolilla- तुवोलिल्ला/तौलिल् ला/तोलिल्-ला = कुर्सी पर।

व्या० जब यह पकाने के काम आती है तो तौलि तथा जब तोलने के काम आती है तो तोलि (तुला) कही जाती है। पौराणिक 'तुलादान' यही है जिसमें यजमान या विशिष्ट व्यक्ति को तुला में बैठाया जाता है। यही कुर्सी भी है, झूला भी।

कु० शिलो = शिला जिस पर पीसा जाता है, सिल।
फि० silla-lla सिल्ला ला (ल्या)/सिल्लाल्ल आ/सिलाल्-आ = पुल पर।
व्या० ये शिलायें पौराणिक हैं, जो जल में भी तैरती हैं। रामायण में वर्णित समुद्र बंधन इन्ही शिलाओं से हुआ है। शरीर में खनिज लवण युक्त झाग/द्रव्य परिपाक का नाम शिला/या सिल्ला है जो पानी में धुलती नहीं है तैरती रहती है, यही शिला या पुल है (जैसे मेढ़क की लार, मकड़ी के जाले के तार, समुद्र फेन)।

कु० एह धोई लायन = इसे धोकर लाओ/यह धोकर लाया हुआ है।
इह डोइल्लाइन = इस (के) लिए डोली लाओ।
फि० ehdo-i-lla-an - इह दोइ (= धोइ) ल्लायन/इह डोइ (डोली) ल्लायन = अपनी शर्त पर, उसकी इच्छानुसार।

कु० तालौन बोइ = ताल/तलावी भूमि में बोना, कृषि करना।
फि० talonpoika - तालौंपोइका/तालौन्बोइका = किसान।
व्या० अधिकांश् यूरोपीय भाषाओं में प ब में परिवर्तित हो जाता है। भारतीय भाषाओं में भी यह प्रवृत्ति है जैसे पानी से बानी। ताल में मछली/धान आदि उगाये जाते हैं। शुष्क खेत के लिये यही थालौंन (= थाल में) उच्चरित होता है। धान की घाटी को धान का कटोरा या थाल लोक में कहा जाता है। ताल या थाल में पओइका अथवा बोइका (बोने वाला) कृषक कहलाता है।

कु० भै खेइया = खेने के कार्य का होना (भै, भई, भएइ = होना, करना)।
फि० vaikea - वै (भै) कएआ (खेया) = कठिन।
व्या० खेने का कार्य शरीर में पोषक तत्त्वों को चारों ओर ले जाना होता है। यह दुरूह कार्य होता है। सामान ढोना सबको कठिन लगता है। दूसरी व्यु० है बआइ (बहाइ) + कएआ = बहाने की क्रिया करना। किसी को बहा देना अति कठोर कर्म है पर शरीर संसार में ऐसा ही होता है। कुन्ती ने कर्ण को बहाने का कठिन कार्य किया था।

कु० भिज्, भिजनु/विचिल्ला/भिजिल्ला = भीगना/फिसलन/भीगे हुए।
फि० ves-i-lla भिजिल्ला/विचिल्ला = पानी में।
व्या० शरीर में पानी भौतिक जल की तरह नहीं होता है वह रसों का मिश्रण होता है, जो दूसरों को 'भिजाता' भी है तथा 'फिसालता' भी है।

कु० तालो/तलो = ताल/आधार, घर। थालो = थल/रहने का स्थान।
फि० talo - तालो/तलो = घर।

**व्या०** ताल/थाल की व्यु० ऊपर हो चुकी है जहाँ से भोजन मिलता है वही घर है। जहाँ से 'रस' ग्रहण होता है वह घर है। महाभारत में अनेक 'तालों' (तालाबों) का वर्णन है जहाँ से पाण्डव जल (रस) ग्रहण करते हैं। शरीर में ताल (रसों का भण्डार) ही जीवन का आधार होते है अत: वही घर भी कहे जाते हैं।

**कु०** ज्याड़, जेड़ीनु, ज्याड़ीनु/झ्याड़वे = एक में चिपकना, एकत्र होना/झाड़ (घास ) का पुंज।

**फि०** jarve - जारवे/ज्याड़भे/ज्याड़वी = झील।

**व्या०** सम्पूर्ण जल स्रोतों का परस्पर सम्बद्ध हो जाना ज्याड़ या जेड़ीनु है। इसकी दूसरी व्यु० झाड़वे/ झाड़भे है। झाड़ = वृक्ष, कुंज; कुमाउनी में झील घने कुंज को भी कहते हैं। अत: शरीर की शाखा–प्रशाखाओं को परस्पर सम्बद्ध करने वाले द्रव्य (रस) का नाम झील है। इसमें शरीर वृक्ष को एक सम्पूर्ण झील के रूप में देखा गया है।

**कु०** छानोआ/सानोया (आ) = छाना हुआ, छानने की स्थिति का आना/सानना, मिश्रण में तीखा पन लाना/जैसे रायता सानना।

**फि०** sanoa - सानोआ (या)/छानोआ = कहना।

**व्या०** सानने और छानने से झाग बनते हैं, इनसे उत्पन्न ध्वनि ही कहना है। पंक में धूप लगने से स्वत: सानने और छानने की क्रिया उत्पन्न होती है। इसमें उत्पन्न श-श की ध्वनि ही बोलना है। नीबू रस में सोडा मिला दें (सान दें) वह कहता है, बोलता है। रसायनीकरण से उत्पन्न ध्वनि ही बोलना है।

**कु०** छाप्/छापा = चिन्ह, पैरों के चिन्ह। छाप्या = जिनसे दूसरे को छापा जाय, ढका जाय।

**फि०** saappaa - साप्पा/छाप्पा/छाप्या = जूते।

**व्या०** यह वह द्रव्य/वस्तु है जिससे चिन्ह बनते हैं तथा दूसरों को ढक (छाप) लेती है। दूसरी व्युत्पत्ति है- साप्पा > साफ्फा > साफा। जिस प्रकार सिर की सुरक्षा साफे से होती है वैसे ही पैरों की रक्षा भी ऐसे लेप से हो जाती है जिससे साफा भी बनता है। द्रव्य एक है, इसका रूढ़ प्रयोग जैसे किया जाय लोक में वही अर्थ रूढ़ हो जाता है।

**कु०** बिनउ/बिनइ = बीना हुआ (चुना हुआ)/जिससे बीना जाय। बिनाय/बीनेई = बुनाई किया हुआ/जिससे बुनाई की जाय।

**फि०** venee- वीनीय/वीनी = नाव।

**व्या०** शरीर में नाव चलने (नावन क्रिया) से बुनाई, बिनाई आदि सम्पन्न हो जाती है। इसी आधार पर 'वीनेई' 'वीनी' का अर्थ नाव किया गया है। दूसरी व्युत्पत्ति वएनेई > बहे नेई = बहने और बीनने की क्रिया है। बहना स्वयं में प्राकृतिक नाव है, जो अन्य क्रियाओं को स्वत: सम्पन्न करती है।

आगामी प्रकाशन—

# शब्द विज्ञान

(विश्व भाषाओं की कुमाउनी पर आधारित व्युत्पत्ति)

○ द्वितीय खण्ड में सम्मिलित भाषाएँ ○

| | | |
|---|---|---|
| संस्कृत | अरबी | कोरियन |
| बंगला, उड़िया | हेब्रू | मलय |
| तेलगू | हौसा | तागालोग |
| तमिल | चाडिक | योरूबा |
| कन्नड़ | ताई (थाई) | स्वाहिली |
| मलयालम | वियतनामी | बान्टु |
| मराठी | चीनी | प्राचीन मिश्री |
| पर्शियन | बर्मी | प्राचीन सुमेरियन |
| पश्तो | तिब्बती | प्राचीन हित्ती |
| टर्किक भाषा | जापानी | अन्य भाषाएँ |

एवम्

भाषा यांत्रिकी : वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विवेचन

---

लेखक की अन्य रचनाएँ :-

1. राजनीतिक अस्तित्ववाद
2. परमाणु, मन और विज्ञान
3. भारत के लोगों का संविधान और दर्पण

राजनीतिक अकादमी,
वाराणसी।